श्री मानतुंगाचार्य विरचित

भक्तामर स्तोत्र

मूल, हिन्दी अर्थ, पांच भाषा छन्दोबद्ध भक्तामर, अंग्रेजी अनुवाद, यन्त्र, मन्त्र तथा साधनविधि सहित

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

हीरालाल जैन 'कौशल'
सम्पादक

भगवान् महावीर स्वामी के २५००वें निर्वाण दिवस पर

श्री मानतुंगाचार्य विरचित

भक्तामर स्तोत्र

(श्री आदिनाथ स्तोत्र)

मूल, पांच छन्दोबद्ध भाषा भक्तामर, अँग्रेजी अनुवाद,
हिन्दी अर्थ, यन्त्र, मन्त्र तथा साधन-विधि सहित

भूतपूर्व सम्पादक—

(स्व०) पं० अजितकुमारजी शास्त्री, प्रभाकर

सम्पादक—जैन गजट, देहली

सम्पादक—

पं० हीरालाल जी जैन "कौशल"

अध्यक्ष, जैन विद्वत्समिति, देहली

प्रकाशक

श्रीकृष्ण जैन

मन्त्री—श्री शास्त्र स्वाध्याय-शाला,

श्री पार्श्वनाथ दि० जैन मंदिर,

बाबाजी की बगीची (बर्फखाने के पीछे)

सब्जी मण्डी, देहली-६

चैत्र वदी ६ (श्री ऋषभ-जयन्ती)

तृतीय संस्करण 3000] ता० १७ मार्च १९७४ ईस्वी [मूल्य दो रुपये

पत्र व्यवहार व पुस्तक प्राप्ति का पता
श्रीकृष्ण जैन,
४५३७, पहाड़ी धीरज, देहली-६

आवश्यक निवेदन

इस समय कागज की कमी और महंगाई के कारण प्रकाशन में अत्यधिक खर्च आने पर भी आर्थिक सहायता के भरोसे इस प्रकाशन का कम से कम मूल्य रखा गया है ताकि सभी लोंग इसका लाभ उठा सकें। जो धर्मप्रेमी सज्जन ऐसे प्रकाशन के प्रचार में सहयोग देना चाहें वे इस प्रकाशन की अधिक से अधिक प्रतियां खरीद कर वितरण करें अथवा यथाशक्ति आर्थिक सहायता निम्न पते पर भेजने की कृपा करें—

मन्त्री—श्री शास्त्र स्वाध्याय शाला,
श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, बाबा जी की बगीची,
(बर्फ खाने के पीछे), सब्जी मण्डी, देहली-६।

पुस्तक प्राप्ति के अन्य स्थान :—

श्री करम चन्द जैन, C/o मैसर्ज महाबीर प्रसाद एण्ड संस,
चावड़ी बाजार देहली-६ (फोन—२६२७३५)

जैन साहित्य सदन, श्री दिगम्बर जैन लाल मन्दिर,
चांदनी चौक, देहली-६

मैसर्ज केवल राम शीतल प्रसाद जैन, क्लाथ मर्चेण्ट,
४७४६, पहाड़ी धीरज, देहली-६ (फोन—५११४४६)

श्री वीर पुस्तक मन्दिर,
श्री महावीर जी, (सवाई माधोपुर) राजस्थान

स्वर्गीय ला० बाबूलालजी जैन बिजलीवाले

लालाजी प्रतिष्ठित समाजसेवी, उदार, परोपकारी और शिक्षाप्रेमी ज्जन थे। आप हीरालाल जैन हा० से० स्कूल तथा लक्ष्मीदेवी जैन गर्ल्स ा० से० स्कूल की संचालिका जैन शिक्षा प्रचारक सोसायटी के १५ वर्ष तक ोषाध्यक्ष रहे। आप दि० जैन बड़ा मन्दिर जी एवं जैन धर्मशाला पहाड़ी-रज दिल्ली के प्रबन्धक थे। समाज की अन्य अनेक संस्थाओं से भी आपका कट का सम्बन्ध था। आपका स्वर्गवास १६ मार्च १९४६ को हुआ था।

आप अत्यन्त धर्मात्मा थे तथा आपको भक्तामर स्तोत्र बहुत प्रय था। भगवान महावीर स्वामी के २५०० वें निर्वाणोत्सव के पुनीत वसर पर लालाजी की स्मृति में आपके परिवार की ओर से भक्तामर स्तोत्र की ५०० प्रतियां वितरित की जा रही हैं।

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, सब्जी मण्डी, देहली

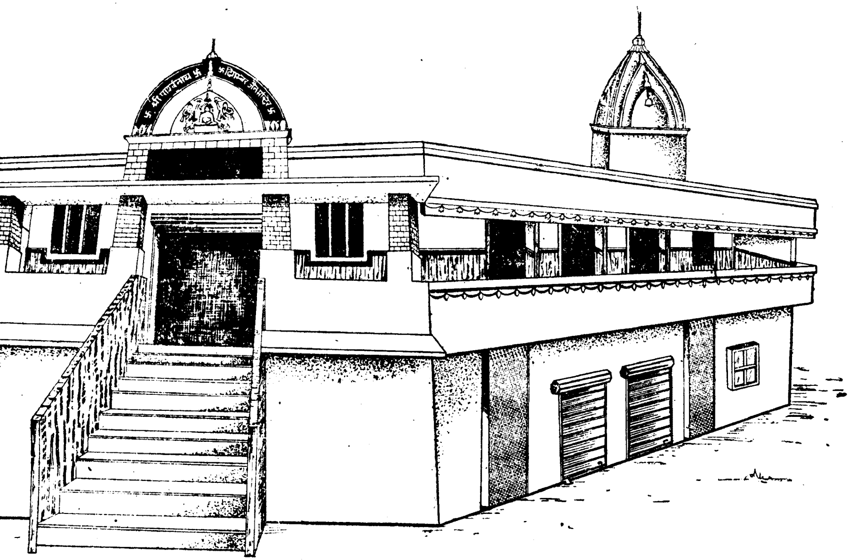

यह प्राचीन दिगम्बर जैन मन्दिर है। यहां भट्टारक जी की गद्दी थी इसलिए यह भट्टारक जी के मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। यहां भगवान् पार्श्वनाथजी की अत्यन्त मनोज्ञ अतिशय युक्त प्रतिमा विद्यमान है।

पूज्य श्री १०८ आचार्यरत्न देशभूषणजी महाराज के संरक्षण में इस मन्दिर का सन् १९६६ ई० में जीर्णोद्धार हो चुका है।

प्रकाशकीय—

दो शब्द

'भक्तामर स्तोत्र' का असली नाम 'आदिनाथ स्तोत्र' है। इसमें प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ की भक्ति-भाव-पूर्ण स्तुति की गई है। इसके प्रारम्भ में 'भक्तामर' शब्द का प्रयोग होने से इस स्तोत्र का नाम भी 'भक्तामर स्तोत्र' प्रसिद्ध हो गया है। इसके रचयिता श्री मानतुंगाचार्य थे। इसकी रचना राजा भोज और कवि कालिदास के समय में विशेष परिस्थिति में हुई थी। इस विषय की कथा आगे "परिचय" में दी गई है। भक्तामर-महिमा भी दी जारही है।

इस स्तोत्र का दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों जैन परम्पराओं में बहुत महत्व तथा व्यापक प्रचार है। ऐसा माना जाता है कि इसे भक्ति-भावपूर्वक पढ़ने से सब प्रकार के विघ्न तथा बाधायें दूर होती हैं, मनवाञ्छित कार्य सिद्ध होते हैं तथा जीवन सुख-शान्ति-मय बनता है।

इस स्तोत्र में आचार्य मानतुंग स्वामी ने एकाग्र मन से भक्ति-विभोर होकर जिस तन्मयता से भगवान आदिनाथ की स्तुति की है उससे इसके प्रत्येक शब्द में एक चमत्कार उत्पन्न हो गया है। यहाँ तक कि आगे चलकर इसके प्रत्येक श्लोक का मंत्र के रूप में प्रयोग होने लगा और इसके पढ़ने का अधिकाधिक प्रचार हुआ।

अब सस्कृत भाषा का प्रचार कम हो जाने से आज का युग यह नहीं जानता कि इसमें कौनसा अमृत भरा है। पर इसको पढ़कर जैन और जैनेतर सभी ज्ञानीजन प्रभावित और मुग्ध हो जाते हैं। उसके फलस्वरूप अनेक कवियों ने अपनी भाषाओं में इसका भावपूर्ण छन्दोबद्ध अनुवाद भी किया है। इसमें अन्य अनुवादों के साथ सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० गिरिधर शर्मा कृत हिन्दी अनुवाद भीं दिया गया है। अन्य अनेक भाषाओं में भी भक्तामर स्तोत्र के अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं।

इस प्रकाशन में स्तोत्र का संस्कृत छन्द, उसका अर्थ, पं० हेमराज कृत भाषानुवाद, ऋद्धि-मंत्र तथा अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत हैं। प्रत्येक श्लोक के ऊपर उसका महत्त्व (उपयोग) भी लिख दिया गया है। भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न कवियों के हिन्दी भक्तामर रुचिकर एवं प्रचलित होने से इसमें भी ४ अनुवाद दिये गये हैं। फिर मंत्र की दृष्टि से प्रत्येक श्लोक सम्बन्धी साधना विधि तथा अन्त में सभी ४८ श्लोकों के यंत्र भी दिये हुये हैं। इस प्रकार इस प्रकाशन में श्री भक्तामरजी के नित्यपाठ, जाप तथा अखंड-पाठ सभी के लिये सब प्रकार की सामग्री विद्यमान है।

इसके दो संस्करण पहले निकल चुके हैं। उनका सम्पादन समाज के प्रसिद्ध लेखक माननीय पं० अजितकुमार जी शास्त्री, सम्पादक "जैनगजट" देहली द्वारा हुआ था। उनको लोगों ने बहुत पसन्द किया। उनके असामयिक निधन से हमारे इन सभी प्रकाशनों को बड़ी क्षति पहुंची है।

प्रस्तुत संस्करण

प्रसन्नता की बात है कि मेरे आग्रह पर इस तीसरे संस्करण का कार्य समाज के सुप्रतिष्ठित विद्वान् श्रीमान् पं० हीरालाल जी जैन 'कौशल' अध्यक्ष, जैन विद्वत्समिति, देहली ने संभाला है। आपने इसमें कुछ परिवर्तन और परिवर्द्धन के साथ ही पर्याप्त समय लगाकर तथा कई लिखी व छपी प्रतियों से मिलान कर इसका पुनः सम्पादन भी किया है। इसके लिए मैं आपका विशेष आभारी हूं।

आशा है कि यह प्रकाशन भी सभी को रुचिकर होगा तथा लोग इससे पूर्ण लाभ उठायेंगे। सम्भव है इसमें कुछ कमियाँ रह गई हों। ज्ञानीजन कृपया हमें उनकी सूचना दें तथा इस विषय में उपयोगी सुझाव और जानकारी भेजें जिससे आगामी संस्करण में उनसे लाभ उठाया जा सके।

श्रीकृष्ण जैन, प्रकाशक

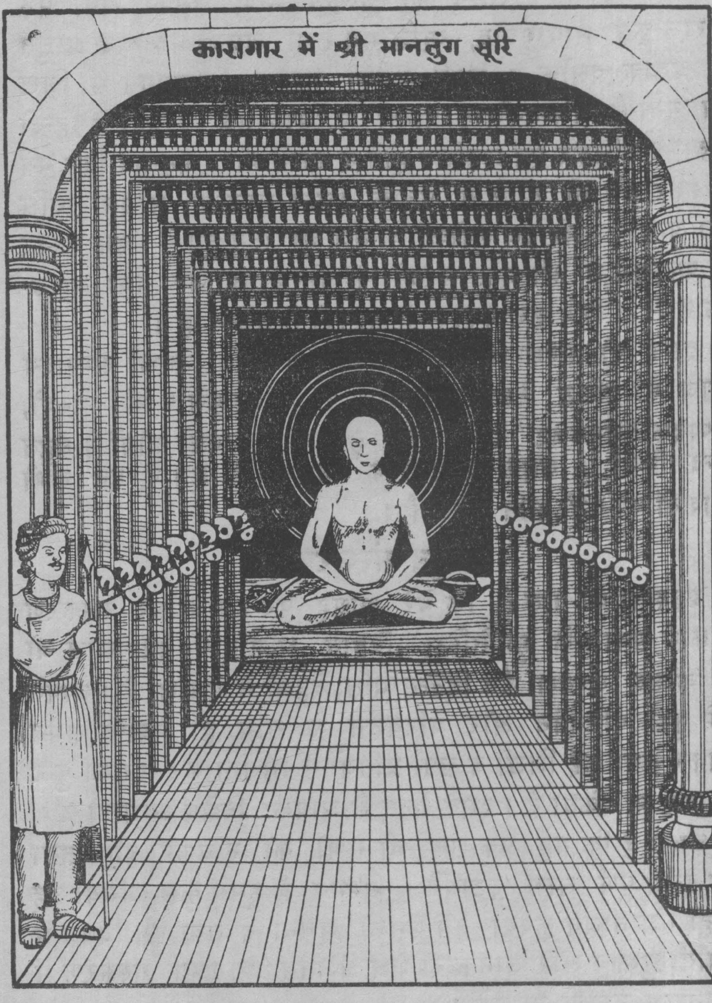

भक्तामर स्तोत्र के प्रभाव से ४८ ताले टूट गए

भक्तामर-महिमा

श्री भक्तामर का पाठ, करो नित प्रात, भक्ति मन लाई।
सब संकट जायें नशाई ॥

जो ज्ञान-मान-मतवारे थे, मुनि मानतुंग से हारे थे।
उन चतुराई से नृपति लिया बहकाई ॥ सब संकट० ॥१॥

मुनि जी को नृपति बुलाया था, सैनिक जा हुक्म सुनाया था।
मुनि वीतराग को आज्ञा नहीं सुहाई ॥ सब संकट० ॥२॥

उपसर्ग घोर तब आया था, बलपूर्वक पकड़ मंगाया था।
हथकड़ी बेड़ियों से तन दिया बंधाई ॥ सब संकट० ॥३॥

मुनि कारागृह भिजवाये थे, अड़तालिस ताले लगाये थे।
क्रोधित नृप बाहर पहरा दिया बिठाई ॥ सब संकट० ॥४॥

मुनि शान्तभाव अपनाया था, श्री आदिनाथ को ध्याया था।
हो ध्यान-मग्न भक्तामर दिया बनाई ॥ सब संकट० ॥५॥

सब बन्धन टूट गए मुनि के, ताले सब स्वयं खुले उनके।
कारागृह से आ बाहर दिये दिखाई ॥ सब संकट० ॥६॥

राजा नत होकर आया था, अपराध क्षमा करवाया था।
मुनि के चरणों में अनुपम भक्ति दिखाई ॥ सब संकट० ॥७॥

जो पाठ भक्ति से करता है, नित ऋषभ-चरण चित धरता है।
जो ऋद्धि-मंत्र का विधिवत जाप कराई ॥ सब संकट० ॥८॥

भय विघ्न उपद्रव टलते हैं, विपदा के दिवस बदलते हैं।
सब मन-वाञ्छित हों पूर्ण, शान्ति छा जाई ॥ सब संकट० ॥९॥

जो वीतराग-आराधन है, आतम-उन्नति का साधन है।
उससे प्राणी का भव-बन्धन कट जाई ॥ सब संकट० ॥१०॥

"कौशल" सुभक्ति को पहिचानो, संसार-दृष्टि बन्धन जानो।
लो भक्तामर से आतम-ज्योति प्रकटाई ॥ सब संकट० ॥११॥

—हीरालाल जैन 'कौशल' देहली

विषय-सूची

		पृष्ठ
१.	श्री पार्श्वनाथ दि० जैन मन्दिर (चित्र)	३
२.	प्रकाशकीय—दो शब्द	४-५
३.	श्री मानतुंगाचार्य का चित्र	६
४.	भक्तामर-महिमा (कविता) 'कौशल'	७
५.	सम्पादकीय भक्ति-महिमा	६-२६
६.	परिचय (श्री पं० अजितकुमार जी शास्त्री)	२७-३३
७.	मन्त्र-साधना सम्बन्धी आवश्यक बातें	३४-३५
८.	भगवान आदिनाथ (ऋषभदेव) का चित्र	३६
९.	भक्तामर स्तोत्र (संस्कृत) भाषा भक्तामर (पं० हेमराज जी कृत), हिन्दी अर्थ ऋद्धि-मंत्र तथा अंग्रेजी अनुवाद	१-४८

भक्तामर स्तोत्र भाषा

१०.	पं० गिरिधर जी शर्मा कृत	४९-५६
११.	पं० नाथूराम जी डोंगरीय कृत	५७-६४
१२.	पं० कमलकुमार जी शास्त्री 'कुमुद' कृत	६५-७२
१३.	श्री रतनलाल जी जैन कृत	७३-८०
१४.	भक्तामर स्तोत्र के मन्त्र (साधन विधि और फल)	८१-८८
१५.	अन्त में सभी ४८ काव्यों के यन्त्र	

सम्पादकीय—

भक्ति-महिमा

भक्ति और उसका प्रभाव

'भज्' धातु में क्तिन् प्रत्यय लगाकर 'भक्ति' शब्द बनता है। अतः भजनं भक्तिः, भज्यते अनया इति भक्तिः तथा भजन्ति अनया इति भक्तिः आदि कई रूपों में इसकी व्युत्पत्ति की गई है। भक्ति अनेक प्रकार से की जाती है। प्रार्थना, स्तुति, स्तवन, श्रद्धा, विनय, वन्दना, आदर, नमस्कार, आराधना, दर्शन, पूजन, मंगल आदि भक्ति प्रदर्शन के ही विविध रूप हैं। सेवा, ध्यान और सामायिक को भी इसी के समकक्ष माना गया है। भक्ति में भक्त को अपना मन सब ओर से हटाकर अपने आराध्य में केन्द्रित करना पड़ता है। अतः उस तरह की सभी क्रियाओं को भक्ति कहा जा सकता है।

धर्म में भक्ति का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैनाचार्यों ने भक्ति के १२ भेद बताये हैं। सिद्ध भक्ति, श्रुत भक्ति, चारित्र भक्ति, योग भक्ति, आचार्य भक्ति, पंचगुरु भक्ति, तीर्थंकर भक्ति, शान्ति भक्ति, समाधि भक्ति, निर्वाण भक्ति, नन्दीश्वर भक्ति और चैत्य-भक्ति। इनमें से तीर्थंकर और समाधि भक्ति का १-२ अवसरों पर ही उपयोग होने से उनका दूसरों में अन्तर्भाव करके दश भक्तियां मानी गई हैं। उन सबका उद्देश्य वीतरागता की ओर प्रेरित करना है।

भक्ति को गृहस्थ और मुनि दोनों के लिये समान रूप से महत्त्व-पूर्ण माना गया है। गृहस्थ के छह आवश्यक कार्यों में तो भक्तिभाव से जिनेन्द्र भगवान के दर्शन पूजन को सर्वप्रथम स्थान प्राप्त है ही

स्तवन को मुनियों के भी आवश्यक कार्यों में गिना गया है। जिनस्तुति का महत्त्व वर्णन करते हुए कहा गया है :—

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति, शाकिनी-भूत-पन्नगाः ।
विषं निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान की स्तुति करने पर विघ्न समूह नष्ट हो जाते हैं, सब प्रकार के भूत प्रेत भाग जाते हैं तथा विष अपना कोई असर नहीं कर सकता।

एकापि समर्थेयं जिन–भक्तिर्दुर्गतिं निवारयितुम् ।
पुण्याणि च पूरयितुं दातुं मुक्ति—श्रियं कृतिनः ॥
समाधिभक्ति ॥८॥

अर्थ—जिनेन्द्र की अकेली भक्ति भी दुर्गति को दूर करने, पुण्य को बढ़ाने तथा भक्त को मुक्ति लक्ष्मी की प्राप्ति कराने में समर्थ है।

अनन्तानन्त-संसार-सन्ततिच्छेद—कारणम् ।
जिनराज-पदाम्भोज-स्मरणं शरणं मम ॥ स.भ. १४॥

अर्थ—भगवान जिनेन्द्र के चरण कमलों का स्मरण अनन्त संसार के कारणभूत कर्मों के समूह को नष्ट होने में कारण है। मुझे उन्हीं चरणों की शरण है।

साधारणतया संसार में 'बात को बढ़ा चढ़ा कर कहना' स्तुति कहलाती है। भगवान के गुणों को बढ़ा चढ़ाकर कहने से भक्त को पापक्षय आदि लाभ कैसे हो सकते हैं? संसार के लोगों के विषय में बढ़ा चढ़ा कर कहने की बात तो चल सकती है, जबकि स्वाभिमानी व्यक्ति ऐसा करना भी अच्छा नहीं समझते, फिर भगवान के विषय में यह बात कहाँ तक उचित कही जा सकती है? इस विषय में आचार्य समन्तभद्र ने अपने स्वयम्भू स्तोत्र में भगवान अरहनाथ की स्तुति करते हुए बहुत सुन्दर लिखा है:—

गुण-स्तोकं सदुल्लंघ्य तद्-बहुत्व-कथा स्तुतिः ।
आनन्त्यात्ते गुणा वक्तुमशक्यास्-त्वयि सा कथम् ॥

अर्थ—वर्तमान गुणों की अल्पता को उल्लंघन करके जो उनके बहुत्व की कथा की जाती है–उनको बढ़ा चढ़ा कर वर्णन किया जाता है, लोक में उसे स्तुति कहते हैं। हे भगवान् ! वह स्तुति (की परिभाषा) आप में कैसे बन सकती है अर्थात् नहीं बन सकती। क्योंकि आप में अनन्त गुण होने के कारण वे गुण ही जब पूरी तरह कहे नहीं जा सकते फिर बढ़ा चढ़ाकर कहने की बात तो बहुत दूर है।

भगवान अनन्त गुणों के भंडार हैं यह बात 'कल्याणमन्दिर' 'भक्तामर' आदि के प्रारम्भ में भी कही गई है। अतः उनके गुणों की स्तुति 'बात को बढ़ा चढ़ा कर' की जाने वाली स्तुति नहीं है। वास्तविकता का ही थोड़ा सा वर्णन है और उससे फल मिलना भी स्वाभाविक है।

वीतराग भगवान की भक्ति से लाभ कैसे होता है ?

यहाँ यह प्रश्न होता है कि जैन सिद्धान्तानुसार जब भगवान रागद्वेषादि से रहित हैं, वे किसी से न कुछ सम्बन्ध रखते हैं और न कुछ लेते देते हैं तो उनकी भक्ति, स्तुति आदि करने का प्रयोजन ही क्या हो सकता है तथा उससे लाभ भी क्या ? इसका उत्तर आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने बहुत ही सुन्दर शब्दों में दिया है :—

न पूजयाऽर्थस्त्वयि वीतरागे, न निन्दया नाथ ! विवान्तबैरे ।
तथाऽपि ते पुण्य-गुण-स्मृतिर्नः पुनाति चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः ॥
स्वयम्भू स्तोत्र ॥५७॥

अर्थ—हे भगवान् ! पूजा वन्दना से आपका कोई प्रयोजन नहीं। राग का अंश ही आपकी आत्मा में नहीं है जिसके कारण

आप पूजा से प्रसन्न होते। निन्दा से भी आपको कोई प्रयोजन नहीं क्योंकि आपकी आत्मा से द्वेष भाव बिल्कुल निकल चुका है। अतः स्तुति और निन्दा आपके लिये दोनों समान हैं। इसलिये स्तुति करके हमारा उद्देश्य आपको प्रसन्न करना तथा फिर आपसे कुछ चाहना नहीं है बल्कि आपके गुणों का स्मरण करने से पाप दूर होते हैं तथा मन पवित्र होता है। इसी कारण मैं आपकी स्तुति करता हूँ।

श्री कुमुदचन्द्राचार्य ने भी इसी बात को कितने सुन्दर ढंग से स्पष्ट किया है :—

हृद्वर्तिनि त्वयि विभो ! शिथिली-भवन्ति,
जन्तोः क्षणेन निविड़ा अपि कर्म-बन्धाः।
सद्यो भुजङ्गममया इव मध्यभाग—
मभ्यागते वन-शिखण्डिनि चन्दनस्य ॥
कल्याणमन्दिर स्तोत्र ॥८॥

अर्थ—हे जिनेन्द्र ! जिस तरह मयूर के आते ही चन्दन वृक्ष में लिपटे हुए सांप ढीले पड़ जाते हैं, उसी तरह जीवों के हृदय में आपका ध्यान आने पर उनके बड़े-बड़े कर्मबन्धन क्षण भर में ही ढीले हो जाते हैं।

मुच्यन्त एव मनुजाः सहसा जिनेन्द्र !
रौद्रैरुपद्रव-शतैस्त्वयि वीक्षितेऽपि ।
गोस्वामिनि स्फुरित-तेजसि दृष्टमात्रे
चौरैरिवाशु पशवः प्रपलायमानैः ॥
कल्याण मन्दिर स्तोत्र ॥१६॥

अर्थ—हे नाथ ! जिस प्रकार तेजस्वी मालिक के दिखते ही चोर चुराई हुई गायों को छोड़ कर शीघ्र ही भाग जाते हैं। उसी तरह आपके दर्शन होते ही अनेक भयंकर उपद्रव मनुष्यों को छोड़ कर भाग जाते हैं।

महाकवि धनञ्जय ने भी स्तुति करते हुए इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि भगवान पुण्य पाप से रहित होते हुए भी भक्तजनों के पुण्यबन्ध में कारण हैं। यथा:—

ततस्त्रिलोकी-नगराधिदेवं नित्यं परं ज्योतिरनंत-शक्तिम् ॥
अपुण्यपापं परपुण्यहेतुं नमाम्यहं वन्द्यमवन्दितारम् ॥
विषापहार स्तोत्र ॥३३॥

अर्थ—हे भगवन् ! आप तीन लोक के स्वामी हैं, आपका कभी भी विनाश नहीं होता, सर्वोत्कृष्ट हैं, केवलज्ञान रूप ज्योति से प्रकाशमान हैं, आप में अनन्त बल है, आप स्वयं पुण्य पाप से रहित हैं पर भक्त जनों के पुण्यबन्ध में निमित कारण हैं, आप किसी को नमस्कार नहीं करते पर सब लोग आपको नमस्कार करते हैं। मैं भी आपको नमस्कार करता हूँ।

इसी प्रकार विषापहार के ३८ वें छन्द में महाकवि कहते हैं :—

इति स्तुतिं देव विधाय दैन्याद्वरं न याचे त्वमुपेक्षकोऽसि।
छायातरुं संश्रयतः स्वतः स्यात्कश्छायया याचितयात्मलाभः ॥

अर्थ—हे देव ! इस प्रकार स्तुति करके मैं दीनभाव से वरदान नहीं माँगता, क्योंकि आप उपेक्षक—रागद्वेष से रहित हैं। परन्तु वृक्ष का आश्रय लेने वाले को वृक्ष से छाया मांगनी नहीं पड़ती (कि हे वृक्ष ! तुम मुझे छाया दो) छाया तो उसे स्वयं प्राप्त हो जाती है।

यथा निश्चेतनाश्-चिन्तामणि-कल्पमहीरुहाः।
कृत-पुण्यानुसारेण तदभीष्ट-फलप्रदाः ॥
तथार्हदादयश्चास्त-राग-द्वेष-प्रवृत्तयः ।
भक्त-भक्त्यनुसारेण स्वर्ग-मोक्ष-फलप्रदाः ॥
दशभक्त्यादि संग्रह ॥३-४॥

जिस प्रकार चिन्तामणि रत्न और कल्पवृक्ष अचेतन हैं फिर भी पुण्यवान पुरुषों को उनके पुण्योदय के अनुसार फल प्रदायक हैं। उसी

प्रकार अरहन्त और सिद्ध भगवान रागद्वेष रहित होने पर भी भक्तों को उनकी भक्ति के अनुसार फल देते हैं। अर्थात् चिन्तामणि और कल्पवृक्ष की तरह भक्ति का फल देने में अचेतन (रागद्वेष रहित) हैं परन्तु उनके निमित्त से होने वाले पुण्योदय के कारण भक्त को भक्ति का फल मिल जाता है।

यहाँ यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि भक्ति में भगवान के गुणों के प्रति जो तल्लीनता होती है वह हृदय के रागद्वेष क्रोध मानादि समस्त विकारों को धो देती है तथा पापक्षय और पुण्यबन्ध करती है। भगवान के गुण इस कार्य में निमित्त पड़ते हैं। यद्यपि यह तल्लीनता भक्त के प्रयत्न का ही फल है पर यह निश्चित है कि भगवान के गुण-स्मरण के बिना उसका होना संभव नहीं है। अतः कृतज्ञता-वश यह कहा जाता है कि भगवान की कृपा से मुझे यह सफलता प्राप्त हुई।

'प्रसन्नेन मनसा उपास्य—मानो भगवान् प्रसन्न इत्यभिधीयते'

अर्थात् प्रसन्न मन से उपासना करने वाला भक्त यह कहता है कि आज भगवान मेरे ऊपर प्रसन्न हैं। उसके मन में जो प्रसन्नता आई है वह भगवान के निमित्त से ही तो आई है। वह उसी प्रसन्न मन से भगवान को देखता है तो उसकी दृष्टि में भगवान भी प्रसन्न दिखते हैं। भगवान तो जैसे हैं वैसे ही हैं। वे न प्रसन्न हैं न अप्रसन्न। वास्तव में उपासक-भक्त का हृदय ही प्रसन्नता का प्रमुख कारण है, भगवान तो उसमें निमित्त मात्र हैं। पर भक्ति में निमित्त को मुख्यता दी जाती है और ऐसा कहा जाता है। इस प्रकार पवित्र भावों द्वारा की गई परमेष्ठी की भक्ति आत्मा में पवित्रता का संचार कर कार्य साधन कर देती है।

भक्ति और राग

कहा जा सकता है कि भक्ति में राग होता है जो पाप बन्ध का कारण है। आचार्य समन्तभद्र ने स्वयम्भू स्तोत्र में इसका समाधान करते हुए लिखा है कि 'जिस प्रकार विष का एक कण समुद्र के जल को दूषित नहीं कर सकता, उसी प्रकार जिनेन्द्र भक्ति से इतना अधिक पुण्य बन्ध होता है कि यदि रंचमात्र पाप बन्ध हो भी तो वह हानिकर नहीं हो सकता।'

भक्ति में जो राग होता है वह मोह नहीं है जो पापबन्ध का कारण बन सके। मोह परवस्तु से होता है और सांसारिक स्वार्थ से पूर्ण होता है। वीतरागी की भक्ति में वह नहीं है क्योंकि वीतरागी से राग करने वाला स्वयं वीतरागी बनना चाहता है जो आत्मा का वास्तविक स्वभाव है, वह पर नहीं है। अतः वीतरागी की सच्ची भक्ति पापबन्ध नहीं कर सकती।

भक्ति से पुण्यबन्ध तथा अपूर्व लाभ

सभी जानते हैं कि संसारी प्राणी आरम्भ (घरेलू काम काज) और परिग्रह (सामान) में फंसा हुआ है तथा राग-द्वेषादि विकारों के कारण हर क्षण कर्म बन्ध करता रहता है। जितनी देर के लिये भी हमारा मन उस चक्कर से हट कर धर्मचर्चा भगवान के गुणस्तवन तथा आत्म चिन्तवन की ओर लग जाता है, उतनी देर के लिये हम पाप कर्मों के बन्ध से तो बचते ही हैं साथ ही स्तुति करते समय चित्त अत्यन्त गद्‌गद् हो जाता है। अपने अहम्भाव को भूल कर भगवान के चरणों में लग जाता है। अतः उस समय जो पुण्य बन्ध होता है उसके द्वारा बाधाओं का दूर हो जाना, विपत्तियों का टल जाना तथा सुख-शान्ति के साधन जुट जाना भी साधारण सी बात है।

भगवान के चिन्तवन, दर्शनेच्छा तथा दर्शन के फल का वर्णन करते हुए श्री भूपाल कवि ने लिखा है :—

किसलयितमनल्पं त्वद्विलोकाभिलाषा-
त्कुसुमितमतिसान्द्रं त्वत्समीप-प्रयाणात् ।
मम फलितममन्दं त्वन्मुखेन्दोरिदानीं,
नयन-पथ-मनाप्ताद्देव पुण्य-द्रुमेण ॥
जिन-चतुर्विंशतिका ॥१३॥

अर्थ—हे भगवान् ! आपके दर्शन करने की इच्छा से पुण्य रूपी वृक्ष लहलहा उठता है। आपके पास जाने से उसमें फल लग जाते हैं। आपका साक्षात् दर्शन पा लेने पर उसमें फल लग जाते हैं। आप का दर्शन अत्यन्त पुण्य का कारण हैं।

इसी बात को और अधिक स्पष्ट शब्दों में सुनिये—

जब चिन्तौ तव सहस फल, लक्खा गमन करेय।
कोड़ाकोड़ि अनन्त फल, जब जिनवर दरशेय ॥

भगनान् के दर्शन का विचार करने पर हजार गुना पुण्य फल, मन्दिर की ओर गमन करने पर लाख गुणा फल तथा दर्शन करने पर करोड़ों गुना फल लगता है।

यद्यपि पाप और पुण्य दोनों बेड़ियां हैं। पर जब तक संसारी प्राणी इनसे ऊपर उठकर शुद्ध प्रवृत्ति में नहीं पहुंचता तब तक अशुभ की अपेक्षा शुभ में रहना योग्य है। शुभ प्रवृत्ति पुण्यबन्ध का कारण है। पुण्य से संसार की बड़ी से बड़ी विभूतियां तथा इन्द्र और चक्रवर्ती के पद तक प्राप्त हो जाते हैं।

भक्ति—अपूर्व साधन

कर्म की दश स्थितियां बताई गई हैं—बन्ध, उत्कर्षण, अपकर्षण संक्रमण, सत्व, उदय, उदीरणा, उपशम, निधत्ति और निकाचना शुभ-अशुभ तीव्र-मन्द भावों के अनुसार नवीन बंधने वाले कर्मों के प्रभाव से पहले बंधे कर्मों में उलटफेर हो जाता है परन्तु निकाचित कर्म में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं होता। उसका अशुभ

फल बड़े बड़े पुण्यात्माओं को भी भोगना ही पड़ता है। उस निकाचित कर्म को दूर करने का एक मात्र अपूर्व साधन वीतराग की भक्ति ही है। श्रीपाल का कुष्टरोग-निवारण इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

आत्म-गुण-स्मरण और आत्म-कल्याण

वास्तव में संसार का प्रत्येक आत्मा उन्हीं गुणों से भरपूर है जो भगवान में हैं। भगवान के गुण प्रकट हो चुके हैं और भक्त के गुण अभी भी कर्मों से ढके हुए हैं। उन गुणों का चिन्तवन दूसरे रूप में अपने आत्मगुणों की ही श्रद्धा और चिन्तवन है। आचार्यों ने वीतरागी भगवान और आत्मा में शक्ति रूप से कोई भेद नहीं माना है। भक्त भगवान के दर्शन करते समय ऐसी भावना करता भी है कि:—

तुम में हम में भेद यह, और भेद कुछ नांहि।
तुम तन तज परब्रह्म भये, हम दुखिया जग मांहि॥

इसलिये अपने आत्मगुणों के चिन्तन और अनुभव के लिये भगवान के गुणों का स्मरण व भक्ति अत्यन्त आवश्यक और परम उपयोगी है। भक्ति के बिना श्रद्धान व ज्ञान होना कठिन है। श्री वादिराज मुनिराज अपने एकीभाव स्तोत्र में कहते हैं:—

शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते सत्यपि त्वयनीचा,
भक्तिर्नो चेदनवधिसुखावञ्चिका कुञ्चिकेयम्।
शक्योद्घाटं भवति हि कथं मुक्ति-कामस्य पुँसो—
मुक्तिद्वारं परिदृढ-महा-मोह-मुद्रा-कवाटम्॥१३॥

अर्थ—हे भगवान्! आपकी भक्ति ही तो सम्यग्दर्शन है जो कि अनन्त सुखों का कारण है और मुक्ति रूपी मन्दिर पर लगे हुए मिथ्यात्वरूपी ताले को खोलने के लिए चाबी की तरह है। जब तक यह भक्तिरूप सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं होता तबतक ज्ञान और चरित्र के रहते हुए भी मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता।

इसी में आगे कहा गया है:—

आत्म-ज्योति-र्निधिरनवधिर्-द्रष्टुरानन्द-हेतुः
कर्मक्षोणी-पटल-पिहितो योऽनवाप्यः परेषां ।
हस्ते कुर्वन्त्यनति चिरतस्तं भवद्भक्तिभाजः
स्तोत्रै-बन्धप्रकृति-परुषोद्दाम-धात्री-खनित्रैः ॥१५॥

हे भगवन् ! जैसे पृथ्वी में गढ़ा हुआ धन कुदाली के बिना प्राप्त नहीं हो सकता, उसी तरह कर्म रूपी परदे के भीतर छुपा हुआ आत्मज्ञान आपके स्तोत्रों के बिना प्राप्त नहीं हो सकता। जब आप की स्तुति से कर्मों का पटल क्षीण होगा, तभी आत्मज्ञान प्राप्त हो सकता है, अन्य प्रकार से नहीं।

श्री विद्यानन्द स्वामी ने अपनी आप्त-परीक्षा में बताया है :—

श्रेयोमार्गस्य संसिद्धिः प्रसादात्परमेष्ठिनः ।
इत्याहुस्-तद्गुण-स्तोत्रं शास्त्रादौ मुनि-पुंगवाः ॥

अर्थ—परमेष्ठी के गुणस्मरण से कल्याण मार्ग (सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र) की प्राप्ति होती है। अतः बड़े-बड़े आचार्यों ने शास्त्र के प्रारम्भ में उनके गुणों का स्तवन किया है।

उन गुणों के प्रति हमारा आकर्षण हमारे पिछले कर्मों को भी हटाता है। इस ओर मन लगाने से हमारी रुचि आत्मचिन्तन व आत्म निरीक्षण की ओर झुकने लगती है जिससे मानव को संसार के पाप तथा बुराइयों से घृणा होने लगती है और उसके जीवन का मार्ग ही बदल जाता है। वह आत्म कल्याण की ओर बढ़ने लगता है और अन्त में संसार के बन्धनों को काटकर पूर्ण शान्ति प्राप्त करने में समर्थ होता है।

पापक्षय तथा परमात्मदशा की प्राप्ति

इस भक्तामर स्तोत्र में स्वयं श्री मानतुंगाचार्य ने भी बड़े ही भक्तिपूर्ण शब्दों में इस भाव को दर्शाया है:—

त्वत्संस्तवेन भव-सन्तति-सन्निवद्धं,
पापं क्षणात् क्षयमुपैति शरीर-भाजाम् ।
आक्रान्त-लोक-मलिनील-मशेषमाशु,
सूर्यांशु-भिन्नमिव शार्वर-मन्धकारम् ॥७॥

अर्थ—हे नाथ ! जिस तरह सूर्य की किरणों द्वारा रात्रि का समस्त अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी तरह आपके स्तोत्र से प्राणियों के अनेक भवों के बन्धे हुए पाप कर्म नष्ट हो जाते हैं ।

आचार्य कुमुदचन्द्र ने भी बड़े ही स्पष्ट शब्दों में इसी बात को कहा है :—

ध्यानाज्जिनेश भवतो भविनः क्षणेन,
देहं विहाय परमात्म-दशां व्रजन्ति ।
तीव्रानलादु-पल-भावमपास्य लोके,
चामीकरत्व-मचिरादिव धातु-भेदाः ॥
कल्याणमन्दिर स्तोत्र ॥१५॥

अर्थ—हे जिनेन्द्र ! जिस प्रकार अशुद्ध स्वर्ण अग्नि की तेज आंच से अपने अशुद्ध भाव को छोड़ केर शीघ्र सोना हो जाता है । उसी प्रकार आपके ध्यान से संसारी जीव भी शरीर को त्याग कर परमात्म-दशा को प्राप्त हो जाते हैं ।

श्री वादीभसिंह सूरि के शब्दों में भक्ति का माहात्म्य देखिये :—

श्रीपतिर्-भगवान् पुष्यात् भक्तानां वः समीहितम् ।
यद्भक्तिः शुल्कतामेति मुक्ति-कन्या-कर-ग्रहे ॥
क्षत्रचूड़ामणि ॥

इसमें कहा है कि भगवान् की भक्ति मुक्तिरूपी कन्या का हाथ पकड़ाने—उसे प्राप्त कराने में कारण है ।

स्तुति करते समय मानव जब तक अहंकार को न छोड़े तथा गुणों मे प्रेम न करे, भगवान् के प्रति उसकी भक्ति हो ही नहीं

सकती। दृढ़ भक्ति के लिये दृढ़ सुश्रद्धा चाहिये। वह ज्ञानपूर्वक ही हो सकती है क्योंकि बिना ज्ञान के श्रद्धा, अन्धश्रद्धा बनकर रह जाती है। श्रद्धा और ज्ञान के साथ सम्यक चारित्र मिलकर मोक्ष-मार्ग बनता है। इस प्रकार भक्ति मोक्षमार्ग—परमात्मपद प्राप्ति का साधन है। इसीलिये स्तुति को सम्यक्त्व-वर्धिनी क्रिया तथा कृतिकर्म (कल्याण का सुलभ साधन) माना गया है।

जिनेन्द्र-गुण-चर्चा

जिनेन्द्र की गुण-स्तुति और दर्शन का तो अपूर्व फल है ही पर उनकी चर्चा का भी महान् फल है। भक्तामर में ही देखिये :—

आस्तां तव स्तवन-मस्त-समस्त-दोषं
त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति।
दूरे सहस्र-किरणः कुरुते प्रभैव
पद्माकरेषु जलजानि विकास-भाञ्जि ॥९॥

अर्थ—प्रभो ! आपके निर्दोष स्तवन में तो अनन्त शक्ति है ही पर आपकी पवित्र कथा-चर्चा भी जगत के जीवों के पापों को नष्ट कर देती है। जैसे सूर्य दूर रहता है पर उसकी उज्ज्वल किरणें ही तालाबों में कमलों को विकसित कर देती हैं।

इसी विषय में दूसरा उदाहरण कल्याणमन्दिर में देखिये :—

आस्ता-मचिन्त्य-महिमा, जिन संस्तुवस्ते
नामापि पाति भवतो भवतो जगन्ति।
तीव्रा-तपोपहत-पान्थ जनान्निदाघे
प्रीणाति पद्म-सरसः सरसोऽनिलोऽपि ॥७॥

अर्थ—हे देव ! आपके स्तवन की तो अचिन्त्य महिमा है ही पर आप का नाम मात्र भी जीवों को संसार के दुःखों से बचा लेता है। जैसे ग्रीष्म ऋतु में तीव्र घाम से सताये हुये मनुष्यों को कमल-

युक्त तालाब तो सुख पहुँचाते हैं पर उन तालाबों की शीतल हवा भी सुख पहुंचाती है।

प्रसिद्ध जैन स्तुतिकार

गौतम गणधर ने भगवान् को वीतराग जानते और मानते हुये भी उनकी भक्ति की तथा आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने बड़े-बड़े स्तोत्रों तथा ग्रन्थों की रचनायें की हैं। स्वामी समन्तभद्र महान् तार्किक तथा वादविवाद पटु और धर्मप्रचारक हुये हैं। आपने अपने स्वयम्भू-स्तोत्र, युक्त्यनुशासन, देवागमस्तोत्र (आप्तमीमांसा) तथा स्तुतिविद्या जैसे महान् ग्रन्थ स्तुति रूप में ही लिखे। उनमें जैनधर्म के सिद्धान्तों का उच्चकोटि का वर्णन विद्यमान है। वे आद्य-स्तुतिकार माने जाते हैं तथा यह बात प्रसिद्ध है कि वे भविष्यत्-काल में तीर्थङ्कर होंगे। वे अत्यन्त तेजस्वी थे, उन्होंने भक्ति में तल्लीन होकर जब भगवान की स्तुति की थी तो एक अन्य मूर्ति में से भगवान् चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र की प्रतिबिम्ब निकल आई थी।

उसके पश्चात् स्तोत्रों की एक परम्परा चली। बड़े-बड़े आचार्यों ने भी स्तोत्र लिखकर अपना भक्तिभाव भगवान के चरणों में भेंट किया। जैन वाङ्मय में स्तोत्रों का अच्छा संग्रह है तथा उनका महत्वपूर्ण स्थान है। समाज में पंचस्तोत्रों का बड़ा प्रचार है तथा प्रत्येक स्तोत्र के साथ उसके प्रभाव की कथायें भी विद्यमान हैं। भक्तामर स्तोत्र के पाठ से श्री मानतुंगाचार्य ४८ तालों के भीतर से निकलकर बाहर आ गये थे। एकीभाव स्तोत्र से उसके रचयिता वादिराज मुनिराज का कुष्टरोग दूर होकर उनका शरीर अत्यन्त दैदीप्यमान् बन गया था।

कल्याण मन्दिर स्तोत्र तो साक्षात् कल्याण का मन्दिर ही है जिसके रचयिता श्री कुमुदचन्द्राचार्य ने अपार जनता के समक्ष ओंकारेश्वर में एक अन्य मूर्ति में से भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिबिम्ब

प्रकटकर सम्राट् विक्रमादित्य को चकित और नतमस्तक कर दिया था। विषापहार स्तोत्र से उसके बनाने वाले महाकवि धनञ्जय के पुत्र का सर्वविष उतर गया था तथा पुत्र इस प्रकार उठ खड़ा हुआ था जैसे कोई सोते से जाग जाता है। भूपाल कविकृत जिन-चतुर्विंशतिका का भी बड़ा प्रभाव बताया जाता है। हिन्दी में भी अनेक सुन्दर स्तुतियाँ विद्यमान हैं और "नरेन्द्रं फणीन्द्रं सुरेन्द्रं अधीशं" तथा 'अब मेरी व्यथा क्यों न हरो, बार क्या लगी' आदि स्तुतियों का महत्व और कथायें भी प्रसिद्ध हैं।

कुछ उदाहरण

भक्ति के द्वारा उन्नति की अनेक कथायें शास्त्रों में वर्णित हैं। जिन जीवों ने श्रद्धा भक्ति से णमोकार मंत्र को सुना, अपने परिणामों को शान्त करके वे तिर्यञ्च (पशु) भी देवगति को प्राप्त हुये। भगवान पार्श्वनाथ के चरित्र में सर्प सर्पिणी के धरणेन्द्र-पद्मावती बन जाने की कथा सर्व-विदित है।

भगवान् महावीर की भक्ति के विचार से अपने मुख में कमल की पंखुड़ी दबाकर जाता हुआ मेंढक मार्ग में हाथी के पैर के नीचे आकर मर गया और देव हो गया। उसने महावीर स्वामी के समोशरण में पहुंच कर उपदेश का लाभ लिया। इस तरह भक्ति से सद्गति मिलती है और वहाँ आत्मोन्नति के प्रचुर साधन मिलने से आगे जीव आत्म-विकास कर सकता है। इसी प्रकार अन्य अनेक कथायें भक्ति का महत्त्व प्रकट कर रही हैं।

राजा श्रेणिक ने अपने कठोर परिणामों के कारण सातवें नरक का बन्ध किया हुआ था पर उनका जीवन बदला और उत्कृष्ट भक्ति के कारण वे महावीर स्वामी के प्रतिष्ठित भक्त कहलाये। उनकी सम्यक् श्रद्धा ने उन्हें इतना ऊंचा उठाया कि सातवें नरक की ३३ सागर की आयु घट कर पहले नरक में ८४ हजार वर्ष की आयु रह

गई। वहाँ से आकर वे भविष्यत् काल के सर्व प्रथम तीर्थङ्कर बनेंगे। यह भक्ति का कितना अनुपम उदाहरण है।

तीर्थङ्करों के जन्म-कल्याणक के वर्णन में आता है कि सौधर्मेन्द्र भगवान् के गुणों से अनुरक्त होकर भक्तिभाव में इतना तन्मय हो जाता है कि स्वयं नृत्य करने लगता है। वह अपने अपार ऐश्वर्य, अपरिमित विभूति तथा अपनी शान शौकत को भूल जाता है। उसे यह ध्यान नहीं रहता कि नृत्य करने के लिए अनेक नृत्य करने वाली देवियाँ विद्यमान हैं. मुझे नृत्य करने की क्या आवश्यकता है ? फिर मैं इतने देवों का अधिपति हूँ, ये सब मुझे नृत्य करते देखकर क्या कहेंगे, पर अन्तरंग की भक्ति के उद्रेक के कारण उसका मन-मयूर ही नहीं नाचता, वह स्वयं भी नाचने लगता है। अपनी इस अटूट सद्भक्ति के कारण वह अपने अगले मानव जीवन से ही मोक्ष प्राप्त करता है। इतना ही नहीं उसकी इन्द्राणी भी इस अवसर पर इस प्रकार भक्ति में गद्गद् हो जाती है कि वह अपनी भक्ति की प्रबलता के कारण स्त्रीपर्याय को छेदकर अगले मानव भव से मोक्ष की अधिकारिणी बन जाती है। ये है सच्ची भक्ति की महिमा।

सच्ची भक्ति तभी सम्भव है जब भगवान् के गुणों में अनुराग हो। यह गुणानुराग भक्त को अपने आत्मगुणों के विकास की प्रेरणा देता है जिससे भक्त एक दिन स्वयं भगवान् बन जाता है।

भक्ति किसकी की जाय ?

आत्म-कल्याण के इच्छुक के लिए भक्ति अरहन्त भगवान् की ही क्यों करनी चाहिए, अन्य देवों की क्यों नहीं ? इस विषय में विद्यानन्द स्वामी श्लोक वार्तिक में कहते हैं।—

अभिमत-फल-सिद्धेरभ्युपायः सुबोधः।
स च भवति हि शास्त्रात्तस्योत्पत्तिराप्तात् ॥
इति भवति स पूज्यस्तत्प्रसादात्प्रबुद्धेः।
न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति ॥

अर्थात्—अभीष्ट फल की सिद्धि का साधन सम्यग्ज्ञान है। वह सम्यग्ज्ञान शास्त्र से होता है। उस शास्त्र की उत्पत्ति आप्त-सच्चे देव-वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी अरहन्त देव से होती है। इस लिये वे देवाधिदेव अरहन्त भगवान् हम सबके द्वारा पूज्य हैं, आराध्य हैं, उपास्य हैं, ध्येय हैं, ज्ञेय हैं। सज्जन पुरुष किये हुई उपकार को नहीं भूलते और अरहन्त भगवान् से सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होने के कारण वे उनकी भक्ति करते हैं।

उनके द्वारा जो अनेकान्त रूप उपदेश दिया गया, आत्म-कल्याण का साधन होने से वही सच्चा शास्त्र है तथा उस मार्ग पर चलने वाले सच्चे वीतरागी निर्ग्रन्थ साधु ही सच्चे गुरु हैं। इन देव शास्त्र गुरु का सच्चा श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है जो मोक्ष महल की पहिली सीढ़ी है। इस प्रकार अरहन्त-भक्ति मोक्ष-प्राप्ति का सीधा साधन है।

इसी बात को और स्पष्ट देखिये :—

जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिः सदास्तु मे।
सम्यक्त्वमेव संसार-वारणं मोक्ष-कारणम् ॥

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान् के चरणों में सदा भक्ति बनी रहे क्योंकि जिन भक्ति संसार के बन्धन से छुड़ाने वाली है और जो संसार से छुड़ाने तथा मोक्ष प्राप्ति का कारण है, वही सम्यक्त्व है।

भक्ति का लक्ष्य

जो व्यक्ति जिनेन्द्र भक्ति के द्वारा लौकिक इच्छाओं की पूर्ति करना चाहता है वह भक्ति की वास्तविकता को नहीं समझा तथा

वह सोने के बदले में मिट्टी लेना चाहता है। वीतरागी प्रभु के गुणों के चिन्तन से जब अनादि काल से कर्मों के चक्कर में फँसा हुआ आत्मा पवित्र हो सकता है और संसार के दुःखों से छूट सकता है तो हमारी भक्ति का लक्ष्य वही होना चाहिये। सांसारिक विभूतियां तो पुण्य की चेरी हैं, उनका प्राप्त होना क्या कठिन है ? भक्ति का उपयोग तो आत्मकल्याण में ही श्रेयस्कर है। इसी बात को आचार्य पूज्यपाद स्वामी 'सर्वार्थसिद्धि' का मंगलाचरण करते हुये लिखते हैं :—

मोक्ष-मार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्म-भूभृताम्।
ज्ञातारं विश्व-तत्वानां वन्दे तद्गुण-लब्धये ।।

अर्थ—मोक्षमार्ग के नेता-प्रवर्तक (हितोपदेशी), कर्मरूपी पर्वतों को आत्मा से दूर कर देने वाले (वीतरागी) तथा संसार के समस्त तत्त्वों को जानने वाले (सर्वज्ञ) भगवान् को मैं तीनों गुणों की प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हूं।

जैन धर्म में भक्ति (श्रद्धा), ज्ञान और चरित्र (आचरण) की त्रिवेणी को मोक्ष का मार्ग माना गया है। मात्र किसी एक से काम नहीं चल सकता। इनमें भक्ति का प्रथम स्थान है। भगवान् की सच्ची भक्ति करने से मोहरूपी अन्धकार विलीन हो जाता है और सम्यग्दर्शन प्रकट होकर हृदय की कलुषता को दूर करके आत्मज्ञान तथा आत्मानुभूति जाग्रत कर देता है। इससे सच्ची शान्ति और पवित्रता प्राप्त होती है। इस प्रकार भगवान् के स्मरण और ध्यान से आत्मा की पूर्ण श्रद्धा जाग्रत होती है तथा वीतराग चारित्र की प्राप्ति का साधन दृष्टिगोचर होने लगता है। अतः सच्ची चतुराई और निपुणता यही है कि हम भगवान् के चरणों का आश्रय न छोड़ें। उनकी भक्ति हमें संसार समुद्र से पार होने में नौका का काम देगी।

आभार

सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री स्वर्गीय पं० अजितकुमार जी शास्त्री ने 'परिचय' में भक्तामर के विषय में पर्याप्त प्रकाश डाला है। अतः इस विषय में अधिक नहीं लिखा जा रहा है। इसके पिछले सम्पादक भी वही थे। उनकी विद्वत्ता और सेवायें जैन इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

प्रस्तुत प्रकाशन

प्रबन्धकों का आग्रह था कि नये संस्करण में परिवर्तन और परिवर्द्धन हो तथा लिखित और छपी प्रतियों के आधार पर अर्थ ऋद्धि-मंत्र तथा यंत्रादि को मिलाकर इसका पुनः सम्पादन किया जाय। अतः इसी ढंग से इस कार्य को सम्पन्न करने का यत्न किया गया है। मंत्र-शास्त्र का ज्ञान न होने से इसमें त्रुटियाँ रहना संभव है। संस्कृत कम जानने वाले भी इस महान् (भक्तामर) स्तोत्र का सुलभता से ठीक २ और शुद्ध पाठ कर सकें, इस दृष्टि से उच्चारण का पूर्ण ध्यान रखकर जगह २ बड़े पदों का विभाजन भी कर दिया गया है। आशा है विज्ञजन क्षमा करेंगे।

इस कार्य में श्री बाबू श्रीकृष्ण जी जैन का पूर्ण सहयोग रहा है। वे अत्यन्त उत्साही और धर्म-प्रेमी सज्जन हैं। उन्हें साहित्य प्रचार की बड़ी रुचि और लगन है। आपने मेरे साथ बहुत समय लगाया है तथा इसे सर्वांग सुन्दर बनाने और प्रकाशन में पयर्प्ता परिश्रम किया है। साथ ही जैन शास्त्र स्वाध्याय शाला को भी हार्दिक धन्यवाद है जिनके यहां से अल्प मूल्य में ऐसे कई सुन्दर और उपयोगी प्रकाशन हो चुके हैं। यह कार्य बहुत बड़ा धर्म-सेवा का कार्य है।

विनीत

हीरालाल जैन "कौशल"

(साहित्यरत्न, शास्त्री, न्यायतीर्थ)

अध्यक्ष, जैन विद्वत्समिति, देहली

परिचय

आत्मा अनन्त शक्ति का पुञ्ज है परन्तु उसकी वह शक्ति कर्मों द्वारा छिपी हुई है। आत्मा प्रयत्न करके ज्यों ज्यों अपना कर्मभार हलका करता जाता है त्यों त्यों उसकी आत्म-शक्ति प्रगट होती जाती है।

संयम, तप, त्याग, आत्मा के कर्म-मल धोने के साबुन है। जो व्यक्ति इनका जितना अधिक प्रयोग करता है उतना ही अधिक उसका आत्मा स्वच्छ होता जाता है और अनेक ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ अनायास उसे प्राप्त होती जाती हैं। आत्म-शुद्धि में तत्पर ऋषियों को तपस्या के बल से अनेक प्रकार की शारीरिक (चारण, विक्रिया, अणिमा, महिमा, लघिमा आदि) वाचनिक (वादित्व, आशोर्वाद, अन्तर्मुहूर्त में द्वादशांग पाठ करना आदि) तथा मानसिक (कोष्ठ, बीज, द्वादशांग-धारणा आदि) एवं आध्यात्मिक (अवधि ज्ञान, मनः पर्यय ज्ञान आदि) ऋद्धियाँ स्वयं सिद्ध हो जाती हैं। घातिकर्म क्षय हो जाने पर तो कैवल्य अवस्था में अर्हन्त भगवान् आत्मा की अनन्त अक्षय शक्तियों के अधिष्ठाता बन ही जाते हैं।

उन अर्हन्त भगवान् की समता प्राप्त करने का इच्छुक श्रद्धालु भक्त-जन अपने स्वच्छ हृदय से उनकी भक्ति में तन्मय हो जाता है तो इस प्रबल भक्ति में तन्मयता के कारण भक्त पुरुष के आत्म-अनुभूति (सम्यग्दर्शन) भी हो जाती है तथा बहुत सा कर्म-पुञ्ज क्षय हो जाता है। तब उसे अनेक अचिन्त्य लाभ स्वयं मिल जाते हैं।

स्वयंभूस्तोत्र, भक्तामर, कल्याण मन्दिर, एकीभाव, विषापहार आदि स्तोत्रों की रचना उसी अचल भक्ति के कारण हुई है। तद-नुसार इन स्तोत्रों के रचयिताओं को रचना करते समय आश्चर्य-जनक लाभ हुआ और कालान्तर में अन्य असंख्य व्यक्तियों ने अच्छा

लाभ प्राप्त किया। इनकी भिन्न-भिन्न ऐतिहासिक कथाएँ परम्परा से दन्तकथा के रूप में चली आ रही हैं।

स्वयम्भू, भक्तामर, कल्याण मन्दिर, एकीभाव आदि आद्य शब्दों के कारण इन स्तोत्रों का नाम इन्हीं शब्दों से प्रसिद्धि में आया है।

भक्तामर-स्तोत्र

मनुष्य जब किसी घनघोर संकट में फँस जाता है उस समय वह अन्य साधारण उपायों का अवलम्बन छोड़कर अपने सर्वोच्च इष्ट-परमात्मा की आराधना में तन्मय हो जाता है, उस परमात्म-तन्मयता से उसमें अपूर्व बल और अदम्य-साहस प्रगट होता है तथा उस समय कोई ऐसा अद्‌भुत चमत्कार उद्‌भूत होता है जो उसकी निराशा को आशा में परिणत कर देता है और उसके संकट को खण्ड खण्ड कर देता है। स्वयम्भूस्तोत्र आदि स्तोत्रों की रचना के समय ऐसे ही प्रभावशाली चमत्कार हुए। भक्तामर स्तोत्र की रचना का इतिहास भी ऐसा ही है।

श्री मानतुङ्ग सूरि एक अच्छे जैन तपस्वी थे। इनका जीवनकाल वही है जबकि प्रख्यात विद्याप्रेमी राजा भोज शासन करता था।

मानतुङ्ग सूरि बिहार करते हुए जब उसकी नगरी में आये, तब वे नगर के बाहर एकान्त स्थान में ठहर गये। नगर के नर-नारी उनके दर्शन वन्दना के लिये उनके निकट पहुंचे, आचार्य महाराज ने सबको हित-कारक उपदेश देकर उन्हें सन्मार्ग की ओर उन्मुख किया। उनके शान्त, निःस्पृह, तेजस्वी, विद्वत्तापूर्ण, सच्चरित्र व्यक्तित्व का जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा, अतः नगर में उनके नाम की धूम मच गई।

राजा भोज के कानों तक भी यह बात पहुंच गई, अतः वह भी ऐसे महात्मा के दर्शन का लोभ संवरण न कर सका। वह अपने

विद्वानों के साथ श्री मानतुङ्ग सूरि के दर्शन करने उनके निकट गया। संस्कृत भाषा के प्रसिद्ध कवि कालिदास भी उसके साथ थे।

राजा भोज ने मुनिराज के दर्शन किये और दर्शन करके बहुत प्रसन्न हुआ। उस समय कालिदास ने ईर्ष्या से मानतुङ्ग सूरि का महत्व कम करने के अभिप्राय से तथा अपनी विद्वत्ता का प्रभाव जमाने के लिये उनके साथ कुछ छेड़-छाड़ कर दी। श्री मानतुङ्ग सूरि केवल चारित्र में ही उन्नत न थे उनका ज्ञान भी तार्किक तथा दार्शनिक विद्वत्ता से बहुत उन्नत था, संस्कृत भाषा पर उनका अच्छा अधिकार था। उधर कालिदास केवल कवि थे। अत: उन्होंने थोड़े से समय के वाद-विवाद में ही कालिदास को निरुत्तर कर दिया। इस तरह कालिदास को बहुत लज्जित होना पड़ा।

घर आकर कालिदास ने रात्रि को कालीदेवी की आराधना की और दूसरे दिन राजसभा में आकर राजा भोज से अनुरोध किया कि मानतुङ्ग सूरि को यहाँ राजसभा में बुलावें, मैं उनके साथ शास्त्रार्थ करूँगा। कालिदास का भारी अनुरोध देखकर राजा भोज ने मानतुङ्ग सूरि को राज-दरबार में बुलाने के लिये अपने अनुचर भेजे। राज-कर्मचारियों ने श्री मानतुङ्ग सूरि से राज-आज्ञा-अनुसार राजसभा में चलने का निवेदन किया।

श्री मानतुङ्ग आचार्य ने कहा कि हम संसार के सभी कारबार का त्याग कर चुके हैं, अत: किसी राजकार्य से हमारा कुछ सम्बन्ध नहीं, इस कारण राजसभा में आने की हमें क्या आवश्यकता है? यदि कोई वार्तालाप हमसे करना हो तो राजा यहाँ आकर कर सकता है, हम राजसभा में नहीं आते।

राजकर्मचारियों ने मानतुङ्ग सूरि का उत्तर राजा भोज को कह सुनाया। उत्तर सुनकर कालिदास ने भोज को और भी भड़काया कि 'यह यथा नाम तथा गुण वाला बड़ा तुङ्ग (ऊँचा) मान

(अभिमान) रखने वाला है, आपको भी कुछ नहीं समझता, इसने राज-आज्ञा का अपमान किया है।' आदि।

राजा भोज का राज-मद जाग्रत हुआ, उसने क्रोध में आकर आज्ञा दी कि 'मानतुङ्ग को बलपूर्वक (जबर्दस्ती) पकड़ कर यहाँ ले आओ।' राज कर्मचारियों ने ऐसा ही किया। वे उन्हें पकड़कर राजदरबार में ले आये।

श्री मानतुङ्ग सूरि ने अपने ऊपर उपसर्ग (उपद्रव) आया जानकर शान्ति के साथ मौन धारण कर लिया, वे आत्म-निमग्न हो गये। राजा भोज ने उन्हें चुप खड़ा देखकर क्रोध के आवेश में आज्ञा दी कि 'हमारे विद्वान् कालिदास के साथ आपको शास्त्रार्थ करना होगा अन्यथा आपको कारावास (जेल) भेज दिया जावेगा।'

मानतुङ्ग ने जब राजा की बात का कुछ उत्तर न दिया तब राजा भोज क्रोध में और भी अधिक लाल हो गया। उसने बिना हित अहित विचारे आज्ञा दी कि 'मानतुङ्ग को बन्दीघर (जेल) के सबसे भीतरी कक्ष में हथकड़ी बेड़ी पहनाकर बन्द कर दो।'

राज कर्मचारियों ने उनको लोहे की हथकड़ी बेड़ी पहना कर ४८ कोठों के भीतर वाले कोठे में बन्द कर दिया और कड़ा पहरा बिठा दिया गया।

रात्रि के पिछले पहर श्री मानतुंग सूरि ने भगवान् आदिनाथ की भक्ति में लीन होकर—

'भक्तामर-प्रणत-मौलि-मणि-प्रभाणां'

श्री आदिनाथ (भक्तामर) स्तोत्र की रचना की। क्रमशः पद्य रचना का पाठ करते हुए जब उन्होंने ४६ वां पद्य—

आपाद-कण्ठ-मुरु-शृङ्खल-वेष्टिताङ्गाः,
गाढं वृहन्निगड-कोटि-निघृष्ट-जङ्घाः।
त्वन्नाम-मन्त्र-मनिशं मनुजाः स्मरन्तः,
सद्यः स्वयं विगत-बन्ध-भया भवन्ति॥

पढ़ा, तब ऐसा अद्भुत चमत्कार हुआ कि श्री मानतुंग सूरि की हथकड़ी बेड़ी स्वयं टूट गई और वे ४८ कोठों के बाहर आ गये। पहरेदार यह विचित्र चमत्कार देखकर दंग रह गये। उन्होंने इस घटना की सूचना राजा को दे दी।

राजा ने जब बन्दीघर में आकर उस चमत्कार को स्वयं देखा तब उसे अपनी भूल प्रतीत हुई। उसने बहुत नम्रता के साथ श्री मानतुंग सूरि के चरणों में नमस्कार करके अपने अपराध की क्षमा मांगी। आचार्य श्री ने उसे क्षमा कर दिया और उसे धर्म-नीति का उपदेश देकर वे वहां से विहार कर गये।

यह ऐतिहासिक घटना है जिसके कारण भक्तामर स्तोत्र की रचना हुई। इसी से मिलती जुलती कथा अन्यत्र भी मिलती है।

श्री अमृतचन्द्र सूरि की तरह मानतुंग मुनि के साथ भी आचार्य पद सूचक 'सूरि' शब्द का प्रयोग हुआ है।

भक्तामर का प्रभाव

भक्तामर स्तोत्र अच्छा प्रभावशाली स्तोत्र है। णमोकार मंत्र के समान इसका प्रभाव भी अचिन्त्य है। स्वच्छ हृदय से श्रद्धा के साथ यदि भक्तामर स्तोत्र का पाठ किया जावे तो सब तरह के संकट दूर हो जाते हैं। यह बात हजारों व्यक्ति अनुभव कर चुके हैं, हमने भी चार-पांच बार इसका अनुभव किया है।

अतः यह स्तोत्र प्रत्येक नर-नारी को शुद्ध कण्ठस्थ होना चाहिये और प्रति दिन इसका नियम-पूर्वक शुद्ध पाठ बड़ी श्रद्धा से करना चाहिये।

श्लोक संख्या

इस स्तोत्र की पद्य संख्या ४८ है। इस स्तोत्र को कल्याण-मंदिर के समान दिगम्बर श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदाय मानते हैं परन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदाय में प्रचलित भक्तामर स्तोत्र में कल्याण मन्दिर

स्तोत्र के समान ४४ पद्य स्वीकृत किये गये हैं । आठ प्रातिहार्यों के प्रतिपादक ८ श्लोकों में से श्वेताम्बरीय भक्तामर स्तोत्र में ४ श्लोक छोड़ दिए हैं । ऐसा करने से शेष चार प्रातिहार्यों का प्रतिपादन कम हो जाता है, अतः चार श्लोकों का कम करना गलत ठहरता है । श्वेताम्बर सम्प्रदाय में भी प्रातिहार्य आठ ही माने गये हैं । कल्याण-मन्दिर स्तोत्र में भी आठ प्रातिहार्यों का वर्णन है ।

कहीं कहीं उपलब्ध लिखित पुस्तकों में भक्ताकर स्तोत्र में ५२ श्लोक मिलते हैं परन्तु न तो वे अतिरिक्त ४ श्लोक उपयोगी हैं क्योंकि उनमें पुनरुक्त कथन है, न भाषा की दृष्टि से उनका मेल भक्तामर के ४८ श्लोकों के साथ ठीक बैठता है । अतः भक्तामर स्तोत्र की श्लोक संख्या ४८ ही ठीक बैठती है ।

मन्त्र-यन्त्र

श्री मानतुंग सूरि ने प्रभावशाली मन्त्रों के बीज भक्तामर स्तोत्र में अच्छे चातुर्य से निविष्ट कर दिए हैं । अतः यह समग्र स्तोत्र ही मन्त्र रूप है ।

तदनुसार किसी मन्त्रवादी विद्वान् ने भक्तामर स्तोत्र के प्रत्येक श्लोक का पृथक् पृथक् यन्त्र तथा मन्त्र ठीक मन्त्र व्याकरण के अनुसार बना दिया है । यह कृति किस विद्वान् की है यह ज्ञात नहीं हो सका ।

श्री मानतुंग सूरि के पश्चात् जैन परम्परा में भट्टारकीय प्रथा का प्रारम्भ हुआ था । भट्टारकों में अनेक भट्टारक अच्छे मन्त्र-शास्त्रवेत्ता विद्वान् हुए हैं । संभवतः उनमें से ही किसी ने यन्त्र मन्त्र की रचना की है ।

विक्रम सं० १६६७ आषाढ़ सुदी ५ बुधवार को श्री वादिचन्द्र मुनि के शिष्य पं० रायमल्ल जी ने ग्रीवापुर में मही नदी के किनारे चन्द्रप्रभ के मन्दिर में भक्तामर स्तोत्र की वे कथाएं संस्कृत भाषा में

लिखकर समाप्त कीं जिनके अनुसार विभिन्न व्यक्तियों ने भक्तामर के विभिन्न श्लोकों की आराधना से अच्छा फल प्राप्त किया। पं रायमल्ल जी ने भी कहीं पर इस बात का उल्लेख नहीं किया कि ये यन्त्र मन्त्र किस विद्वान् ने बनाये हैं।

पद्यानुवाद

भक्तामर स्तोत्र अन्य स्तोत्रों की अपेक्षा अधिक प्रसिद्ध है, जनता० उसे अधिक महत्व देती है, तदनुसार उसके हिन्दी भाषा में अनेक कवियों द्वारा अनेक पद्य-अनुवाद हो चुके हैं। उनमें सबसे प्रथम स्व० श्री पं० हेमराज जी ने हिन्दी भक्तामर की संस्कृत स्तोत्र के अनुरूप पद्य-रचना की है। इनके सिवाय अन्य विद्वान् विदुषियों ने भी भक्तामर की संस्कृत स्तोत्र के अनुरूप पद्य-रचना की है।

टीकाएं

भक्तामर स्तोत्र की विभिन्न भाषाओं में अनेक टीकाएं उपलब्ध हैं। उनमें से संस्कृत भाषा की एक टीका सर्वांग सुन्दर बतलाई जाती है। पूज्य श्री १०८ आचार्य देशभूषण जी महाराज ने जब जयपुर में चातुर्मास-योग धारण किया था उस समय उनको वहां पर एक भाई ने अपने घर विराजमान भक्तामर स्तोत्र की सटीक प्रति दिखलाई थी, वह संस्कृत टीका बहुत सुन्दर और बहुत उपयोगी है। उन भाई ने वह प्रति महाराज को थोड़ी देर दिखाकर लौटा ली, आग्रह करने पर भी फिर नहीं दी।

कनड़ी, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं में भी भक्तामर स्तोत्र भाषार्थ सहित प्रकाशित हो चुका है।

श्रावण शु० ५
वीर सं० २४८२
दि० ११-८-१९५६

निवेदक—
अजितकुमार शास्त्री
सम्पादक—जैन गजट, देहली-६

मंत्र साधना सम्बन्धी आवश्यक बातें

वर्तमान भौतिक युग में खान-पान और रहन-सहन सब बदल गया है। अब खान पान में वह शुद्धि नहीं रह गई है जो एक सच्चे श्रावक के लिए होनी चाहिये। इसी कारण अब त्यागी-व्रतीजनों के लिये अलग से आहार की व्यवस्था होती है। जैन मंत्रों में तो पवित्रता और सात्विक वृत्ति का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

भोजन में हाथ का पिसा मर्यादित आटा, कुयें का पानी, शुद्ध सामान, एक बार भोजन, इन्द्रिय-विजय, ब्रह्मचर्य पालन, चटाई पर सोना, भावों की पवित्रता, धर्मनिष्ठा, साहस, धैर्य, मन्त्र-साधन-विधि का पूर्ण ज्ञान, जाप के योग्य एकान्त पवित्र स्थान तथा आसन, माला, धूप आदि अनुकूल सामग्री जैसी अनेक बातें अपेक्षित हैं। इन सब बातों के बिना मंत्र साधन नहीं करना चाहिये।

मन्त्र-साधना

अपनी कार्य-सिद्धि के लिए जैसे अन्य उपाय किये जाते हैं उसी प्रकार मंत्र आराधना भी एक उपाय है। मंत्रों द्वारा देव देवी अपने वश में किये जाते हैं, उन वशीभूत देवों के द्वारा अनेक कठिन कार्य करा लिये जाते हैं तथा मंत्रों द्वारा मानसिक वाचनिक शारीरिक शक्ति में वृद्धि भी की जा सकती है।

मन्त्र साधन के पूर्व किसी मन्त्रवादी विद्वान् से मन्त्र साधन करने की समस्त विधि जान लेना आवश्यक है। बिना ठीक विधि जाने मन्त्र साधन करने से कभी कभी बहुत हानि हो जाती है, मस्तिष्क खराब हो जाता है, मनुष्य पागल हो जाते हैं।

यदि देवों को वश में करने का उद्देश्य न रख कर किसी कार्य-विशेष की पूर्णता के लिए मंत्र जाप किया जाय तो हानि की संभावना नहीं रहती है।

परन्तु इतनी बात निश्चित है कि जब मनुष्य के शुभ कर्म का

उदय होता है उसी दशा में यंत्र, मन्त्र, तन्त्र सहायक या लाभदायक हो सकते हैं, जब अशुभ कर्म का उदय हो, उस समय यंत्र मन्त्र तन्त्र काम नहीं आते। रावण ने अचल ध्यान से बहुरूपिणी विद्या सिद्ध की थी किन्तु लक्ष्मण के साथ युद्ध करते समय अशुभ कर्म के कारण वह विद्या रावण के काम नहीं आई। इसलिए सदाचार, दान, व्रत-पालन, परोपकार आदि शुभ कार्यों द्वारा शुभ कर्म संचय करते रहना चाहिये। श्रेष्ठ बात तो यह है कि समस्त सांसारिक कार्य छोड़ कर, रागद्वेष की वासना से दूर होकर कर्म बन्धन से छुटकारा पाने के लिए शुद्ध आत्मा का ध्यान किया जावे। परन्तु यदि मनुष्य उस अवस्था तक न पहुँच सके तो उसे अशुभ ध्यान, अशुभ विचार, अशुभ कार्य छोड़कर शुभ कार्य, शुभ विचार करने चाहियें। अन्य व्यक्ति को दुःख पीड़ा या हानि पहुँचाने के लिए मन्त्र का प्रयोग नहीं करना चाहिए। स्व-परहित तथा लोक कल्याण तथा धर्मरक्षा के लिये ही मन्त्र प्रयोग करना उचित है।

मन्त्र-साधन करने के दिनों में खान पान शुद्ध सात्विक होना चाहिये, जहाँ तक हो सके एक बार शुद्ध सादा आहार करे।

उन दिनों में ब्रह्मचर्य से रहकर पृथ्वी पर सोना चाहिये।

शुद्ध धुले हुए वस्त्र पहन कर शुद्ध एकान्त स्थान में बैठना चाहिये, आसन शुद्ध होना चाहिये। सामने लकड़ी के पट्टे पर दीपक जलता रहना चाहिये और अग्नि में धूप डालते रहना चाहिये। विशेष मंत्र-साधन विधि में कुछ फेरफार भी होता है।

यन्त्र को सामने चौकी पर रखना चाहिये।

यन्त्र तांबे के पत्र पर उकेरा हुआ हो अथवा भोजपत्र पर अनार की लेखनी से केसर के द्वारा लिखा हुआ हो।

मंत्र का उच्चारण शुद्ध होना जाहिये।

मंत्र जपते समय मन को इधर उधर न भटकाना चाहिये।

शरीर में एक आसन से अचल बैठे रहने की क्षमता होनी चाहिये।

भक्तामर स्तोत्र

वसन्ततिलकावृत्तम् ।

सर्व विघ्न उपद्रवनाशक

भक्तामर-प्रणत-मौलि-मणि-प्रभाणा-
मुद्योतकं दलित-पाप-तमो-वितानम् ।
सम्यक्प्रणम्य जिन-पाद-युगं युगादा-
वालम्बनं भव-जले पततां जनानाम् ॥१॥

शत्रु तथा शिरपीड़ा नाशक

यः संस्तुतः सकल-वाङ्मय-तत्त्वबोधा-
दुद्भूत-बुद्धि-पटुभिः सुरलोक-नाथैः ।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितय-चित्त-हरै-रुदारैः,
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥२॥

(श्री पं० हेमराजजी रचित भाषा भक्तामर)

दोहा

आदि पुरुष आदीश जिन, आदि सुविधि करतार।
धरम धुरन्धर परमगुरु, नमो आदि अवतार ॥

चौपाई

सुरनत-मुकुट रतन छबि करें, अन्तर पाप तिमिर सब हरें ।
जिनपद बन्दों मनवचकाय, भवजल पतित-उधरन सहाय ॥
श्रुत-पारग इन्द्रादिक देव, जाकी थुति कीनी कर सेव ।
शब्द मनोहर अरथ विशाल, तिस प्रभुकी वरनों गुनमाल ॥

युगप्रवर्तक प्रथम तीर्थंकर देवाधिदेव
भगवान् श्री ऋषभनाथ जी
(श्री आदिनाथ जी)

अर्थ—जो भक्तिवश झुकते हुए (नमस्कार करते हुए) देवों के मुकुटों की रत्न-कान्ति को दीप्तिमान करते हैं, पाप-अन्धकार को दूर करते हैं, तथा कर्मयुग के प्रारम्भ में संसार समुद्र में भटकने वाली जनता की रक्षा करने वाले हैं, ऐसे जिनेन्द्र भगवान के चरणों को प्रणाम करके मैं भी उस आदिनाथ (ऋषभनाथ) भगवान की स्तुति करता हूँ, जिसका स्तवन समस्त शास्त्रों के जानकार, परम बुद्धिमान इन्द्रों ने त्रिलोकवर्ती (तीन लोक के) जीवों का मन मोहित करने वाले बड़े सुन्दर स्तोत्रों से किया है ॥१-२॥

(प्रथम श्लोक) ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं णमो जिणाणं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं स्वाहा ।

मंत्र—ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं श्रीं क्लीं ब्लूं क्रौं ॐ ह्रीं नमः स्वाहा ।

(दूसरा श्लोक) ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो ओहिजिणाणं ।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लूं नमः ।

Haviag duly bowed down to the feet of Jina, which, at the beginning of the yuga, was the prop for men drowned in the ocean of worldliness, and which illumine the lustre of the gems of the prostrated heads of the devoted gods, and which dispel the vast gloom of sins. 1.

I shall indeed pay homage to that First Jinendra, Who with beautiful orisons captivating the minds of all the three worlds, has been worshipped by the lords of the gods endowed with profound wisdom born of all the Shastras. * 2.

* The correct understanding of the entire speech.

सर्वसिद्धिदायक

बुद्धया विनापि विबुधार्चित-पाद-पीठ,
स्तोतुं समुद्यत-मतिर्विगत-त्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जल-संस्थित-मिन्दु-बिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥३॥

विबुध-वंद्यपद ! मैं मति-हीन, हो निलज्ज थुति मनसा कीन
जल-प्रतिबिम्ब बुद्ध को गहै, शशिमण्डल बालक ही चहै ॥

अर्थ—हे विद्वानों द्वारा पूज्य-चरण भगवन् ! मैं आपकी स्तुति करने योग्य बुद्धि न रखता हुआ भी लज्जा छोड़कर आपकी स्तुति करने के लिये तत्पर (तैयार) हुआ हूँ । जैसे—पानी में प्रतिबिम्बित (परछाइं वाले) चन्द्रमा को बच्चे के सिवाय अन्य कौन बुद्धिमान् मनुष्य पकड़ना चाहता है ? (कोई नहीं) ॥३॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो परमोहिजिणाणं ।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सिद्धेभ्यो बुद्धेभ्यः सर्वसिद्धिदायकेभ्यो नमः स्वाहा ।

Shameless I am, O Lord, as I, though devoid of wisdom, have decided to eulogise You, whose feet have been worshipped by the gods. Who, but an infant, suddenly wishes to grasp the disc of the moon reflected in water ? 3.

जलजन्तु निरोधक

वक्तुँ गुणान् गुण-समुद्र शशांक-कान्तान्,
कस्ते क्षमः सुर-गुरु-प्रतिमोऽपि बुद्धया ।
कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-नक्र-चक्रं,
को वा तरीतु-मलमम्बु निधिं भुजाभ्याम् ।।४।।

गुनसमुद्र तुम गुन अविकार, कहत न सुरगुरु पावें पार ।
प्रलय पवन उद्धत जलजन्तु, जलधि तिरै को भुज बलवन्तु ।।

अर्थ—हे गुणसागर प्रभो ! आपके चन्द्र समान उज्ज्वल गुणों को वृहस्पति के समान बुद्धिमान् विद्वान् भी अपनी बुद्धि से नहीं कह सकता । जैसे कि प्रलय समय की प्रबल वायु से उद्वेलित, मगरमच्छों से भरे हुए समुद्र को अपनी भुजाओं से कौन पार कर सकता है ? यानी—कोई भी नहीं ।।४।।

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोहि जिणाणं ।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं जलयात्रा जलदेवताभ्यो नमः स्वाहा ।

Lord, Thou art the very ocean of virtues. Who though vying in wisdom with the preceptor of the gods, can describe Thine excellences spotless like the moon? Whoever can cross with hands the ocean, full of alligators lashed to fury by the winds of the Doomsday. 4

नेत्ररोग निवारक

सोऽहं तथापि तव भक्ति-वशान्मुनीश,
कर्तुं स्तवं विगत-शक्ति-रपि प्रवृत्तः ।
प्रीत्यात्म-वीर्य-मविचार्य्य मृगी मृगेन्द्रं,
नाऽभ्येति किं निज-शिशोः परि-पालनार्थम् ।५।

सो मैं शक्तिहीन थुति करूं, भक्ति भाववश कछु नहिं डरूं ।
ज्यों मृगि निज सुत पालन हेत, मृगपति सन्मुख जाय अचेत।।

अर्थ—हे मुनिनाथ भगवन् ! फिर भी शक्तिहीन मैं, भक्तिवश आपकी स्तुति करने के लिए तैयार हुआ हूं । जिस तरह सिंह द्वारा पकड़े गये अपने बच्चे को छुड़ाने के लिये बच्चे के मोहवश अपनी अल्पशक्ति का विचार न करके हिरनी सिंह का सामना करने के लिये जा पहुंचती है ।।५।।

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अणंतोहि जिणाणं ।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं क्रौं सर्व सङ्कट निवारणेभ्यः सुपार्श्व यक्षेभ्यो नमो नमः स्वाहा ।

Though devoid of power, yet urged by devotion, O Great Sage, I am determined to eulogise. Does not a deer, not taking into account its own might, face a lion to protect its young-one out of affection ? 5.

विद्या प्रदायक

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहास-धाम,
त्वद्भक्ति-रेव-मुखरी-कुरुते बलान्माम् ।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्र-चारु-कलिका-निकरैक-हेतु ॥ ६ ॥

मैं शठ सुधी-हँसन को धाम, मुझ तुव भक्ति बुलावै राम ।
ज्यों पिक अम्ब-कली परभाव, मधु ऋतु मधुर करै आराव ॥

अर्थ—भगवन् ! मैं बुद्धिमानों के उपहास करने योग्य अल्पज्ञ हूँ फिर भी आपकी भक्ति ही मुझे आपका स्तवन करने को प्रेरित करती है। वसन्त ऋतु में जो कोयल मीठी वाणी बोलती है उसका कारण आम के वृक्षों पर आने वाला बौर (फूल) ही होता है ॥६॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो कुट्ठ बुद्धीणं ।

मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रां श्रीं श्रूं श्रः हं सं थ थ थः ठः ठः सरस्वती भगवती विद्या प्रसादं कुरु कुरु स्वाहा ।

Though my learning is poor, and I am the butt of ridicule to the learned, yet it is my devotion towards You, which forces me to be vocal. The only cause of the cuckoo's sweet song in the spring-time is indeed the charming mango buds. 6.

सर्व विष व संकट निवारक

त्वत्संस्तवेन भव-सन्तति-सन्निबद्धं,
पापं क्षणात्क्षय-मुपैति शरीर-भाजाम् ।
आक्रान्त-लोक-मलिनील-मशेष-माशु,
सूर्यांशु-भिन्न-मिव शार्वर-मन्धकारम् ।। ७ ।।

तुम जस जंपत जन छिनमाहिं, जनम जनम के पाप नशाहिं ।
ज्यों रवि उगै फटै तत्काल, अलिवत् नील निशा-तम-जाल ।।

अर्थ—हे नाथ ! आपकी स्तुति करने से जीवों के अनेक भवों के संचित पापकर्म क्षण भर में क्षय हो जाते हैं । जैसे कि प्रातः समय सूर्य की किरणों से भौंरे की तरह काला, जगत में फैला हुआ रात्रि का अन्धकार तत्काल छिन्न भिन्न हो जाता है ।।७।।

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो बीजबुद्धीणं ।

मन्त्र—ॐ ह्रीं हं सं श्रां श्रीं क्रौं क्लीं सर्वदुरित सङ्कट क्षुद्रोपद्रव-कष्ट-निवारणं कुरु कुरु स्वाहा ।

As the black-bee-like darkness of the night, over-spreading the universe, is dispelled instantaneously by the rays of the sun, so is the sin of men, accumulated through cycles of births, dispelled by the eulogies offered to you. 7.

सर्वारिष्ट निवारक

मत्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनुधियाऽपि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी-दलेषु,
मुक्ताफल-द्युति-मुपैति ननूद-बिन्दुः ॥ ८ ॥

तुव प्रभावतें कहूँ विचार, होसी यह थुति जन-मनहार ।
ज्यों जल कमल पत्र पै परै, मुक्ताफल की द्युति विस्तरै ॥

अर्थ—हे नाथ ! आपके स्तवन की ऐसी महिमा मानकर मैं अल्पबुद्धि भी आपकी स्तुति प्रारम्भ करता हूँ । आपके प्रभाव से यह स्तुति सत्पुरुषों का चित्त आकर्षित करेगी । जैसे कमल के पत्ते पर पड़ी हुई पानी की बूंद मोती सरीखी शोभायमान होती है ॥८॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं णमो पादाणुसारिणं ।

मन्त्र—ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं स्वाहा । ॐ ह्रीं लक्ष्मण रामचन्द्र देव्यै नमः स्वाहा ।

Thinking thus O Lord, I though of little intelligence, begin this eulogy (in praise of you), which will, through Your magnanimity, captivate the minds of the righteous, water drops, indeed assume the lustre of pearls on lotus leaves. 8.

सर्वभय निवारक

आस्तां तव स्तवन-मस्त-समस्त-दोषं,
त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्र-किरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकास-भाञ्जि ॥९॥

तुम गुन महिमा हत दुख-दोष, सो तो दूर रहो सुखपोष ।
पापविनाशक है तुम नाम, कमल विकासी ज्यों रविधाम ॥

अर्थ—हे प्रभो ! सर्व दुख दोषनाशिनी आपकी स्तुति की बात ही क्या, केवल आपका नाम लेना भी जगत के पाप नष्ट कर डालता है। जिस तरह सूर्य बहुत दूर रहता हुआ भी प्रकाश करता है तथा कमलों के वन में कमल के फूलों को विकसित कर देता है ॥९॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं णमो संभिण्ण-सोदराणं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः फट् स्वाहा ।

मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्रौं क्ष्वीं रः रः हं हः नमः स्वाहा ।

Let alone Thy eulogy, which destroys all blemishes even the mere mention of Thy name destroys the sins of the world. After all the sun is far away, still his mere light makes the lotuses bloom in the tanks. 9.

कूकर विष निवारक

नात्यद्भुतं भुवन-भूषण-भूतनाथ,
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्त-मभिष्टु-वन्तः ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥१०॥

नहिं अचंभ जो होंहि तुरंत, तुमसे, तुम गुण वरणत सन्त ।
जो अधीन को आप समान, करै न सो निन्दित धनवान ॥

अर्थ—हे जगत-भूषण जगदीश्वर ! संसार में जो भक्त पुरुष आपके गुणों का कीर्तन करके आपका स्तवन करते हैं वे आपके समान भगवान् बन जाते हैं, इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है। क्योंकि वह स्वामी भी किस काम का, जो कि अपने दास को अपने समान न बना सके, सदा दास ही बनाये रखे ?

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो सयं बुद्धीणं ।

मन्त्र—जन्मसध्यानतो जन्मतो वा मनोत्कर्ष-धृतावादिनोर्यानाक्षान्ता भावे प्रत्यक्षा बुद्धान्मनो ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं ह्रः श्रां श्रीं श्रूं श्रः सिद्ध-बुद्ध-कृतार्थो भव भव वषट् सम्पूर्णं स्वाहा ।

O ornament of the world ! O Lord of beings ! No wonder that those, adoring You with (Thy) real qualities, become equal to you. What is the use of that (master), who does not make his subordinates equal to himself by (the gifts of) wealth. 10.

इच्छित-आकर्षक

दृष्टवा भवन्त-मनिमेष-विलोकनीयं,
नान्यत्र तोष-मुपयाति जनस्य चक्षुः ।
पीत्वा पयः शशिकर-द्युति-दुग्ध-सिन्धोः,
क्षारं जलं जलनिधे रसितुँ क इच्छेत् ॥११॥

इकटक जन तुमको अविलोय, अवरविषै रति करै न सोय।
को करि क्षीरजलधि जल पान, क्षीर नीर पीवै मतिमान ॥

अर्थ—हे भगवन् ! टकटकी लगाकर आपका दर्शन कर लेने पर मनुष्य के नेत्र अन्य किसी को देखने में सन्तुष्ट नहीं होते । जिस तरह चन्द्र समान उज्ज्वल क्षीरसागर का मीठा जल पीकर खारे समुद्र का खारा पानी कौन पीना चाहता है ? अर्थात् कोई नहीं ॥११॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो पत्तेय-बुद्धीणं ।

मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं श्रां श्रीं कुमति-निवारिण्यै महामायायै नमः स्वाहा ।

Having (once) seen You, fit to be seen with winkless eyes or by Gods, the eyes of man do not find satisfaction elsewhere. Having drunk the moon white milk of the milky ocean, who desires to drink the saltish water of the sea ? 11.

हस्तिमद-निवारक

यैः शान्त-राग-रुचिभिः परमाणु-भिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रि-भुवनैक-ललाम-भूत ।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समान-मपरं न हि रूपमस्ति ॥ १२ ॥

प्रभु तुम वीतराग गुणलीन, जिन परमाणु देह तुम कीन ।
हैं तितने ही ते परमाणु, यातैं तुम सम रूप न आनु ॥

अर्थ—हे त्रिजगत के अलङ्कार ! जिन शान्तिमय परमाणुओं से आपके शरीर का निर्माण हुआ (बना) संसार में वे परमाणु केवल उतने ही थे, इसी कारण आपके समान शान्त वीतराग रूप और किसी देव का नही दिखाई देता ॥ १२ ॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो वोहि-बुद्धीणं।

मन्त्र—ॐ आं आं अं अः सर्व-राज-प्रजामोहिनी सर्व-जन-वश्यं कुरु कुरु स्वाहा ।

O supreme ornament of all the three worlds ! As many indeed in this world were the atoms possessed of the lustre of non-attachment, that went to the composition of Your body and that is why no other form like that of Yours exists on this earth. 12.

चोर भय व अन्यभय निवारक

वक्त्रं क्व ते सुर-नरोरगनेत्र-हारि,
निःशेष-निर्जित-जगत्त्रित-योपमानम् ।
बिम्बं कलंक-मलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पाण्डु-पलाश-कल्पम् ॥१३॥

कहं तुम मुख अनुपम अविकार, सुरनरनागनयनमनहार ।
कहां चन्द्र-मण्डल सकलंक, दिन में ढाक पत्र सम रंक ॥

अर्थ—हे भगवन् ! सुर नर असुर के नेत्रों को अपनी ओर आकर्षित करने वाले, समस्त जगत में अनुपम, आपके मुख-मण्डल की बराबरी चन्द्रमा कहाँ कर सकता है जिसमें कि काला लांछन लगा हुआ है तथा जो दिन के समय ढाक के पत्ते की तरह कान्ति-हीन हो जाता है ॥१३॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो ऋजुमदीणं ।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं हं सः ह्रौं ह्रां द्रां द्रीं द्रौं द्रः मोहिनी सर्व जन वश्यं कुरु कुरु स्वाहा ।

Where is Thy face which attracts the eyes of gods, men, and divine serpents and which has thoroughly surpassed all the standards of comparison in all the three worlds. That spotted moon-disc which by the day time becomes pale and lustreless like the white, dry leaf, stands no comparison ! 13.

आधि-व्याधि-नाशक लक्ष्मी-प्रदायक

सम्पूर्ण-मण्डल-शशांक-कला कलाप-
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति ।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वर-नाथमेकं,
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ॥१४॥

पूरन चंद जोति छबिवंत, तुम गुन तीन जगत लंघंत ।
एक नाथ त्रिभुवन आधार, तिन विचरत को करै निवार ॥

अर्थ—हे भगवन् ! पूर्ण चन्द्र समान उज्ज्वल आपके गुण तीन लोकों को भी लाँघ गये हैं । सो ठीक ही है, जो एक त्रिलोकीनाथ के ही आश्रय रहें उनको यथेच्छ विहार करते हुए कौन रोक सकता है ? (कोई नहीं) ॥१४॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो विपुल मदीणं ।

मंत्र—ॐ नमो भगवती गुणवती महामानसी स्वाहा ।

Thy virtues, which are bright like the collection of digits of full-moon, bestride the three worlds. Who can resist them while moving at will, having taken rosort to that supreme Lord Who is the sole overlord of all the three worlds. 14.

राजसम्मान-सौभाग्यवर्धक

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभि-
र्नीतं मनागपि मनो न विकार-मार्गम् ।
कल्पान्त-काल-मरुता चलिता-चलेन
किं मन्दराद्रि-शिखरं चलितं कदाचित् ।१५।

तिय

जो सुरतिय विभ्रम आरम्भ, मन न डिग्यो तुम तो न अचम्भ ।
अचल चलावै प्रलय समीर, मेरु शिखर डगमगै न धीर ॥

अर्थ—प्रभो ! इसमें क्या आश्चर्य की बात है कि सुन्दरी देवाङ्गनाओं का हाव भाव देख कर भी आपका मन जरा भी विकृत नहीं हुआ । क्योंकि प्रलयकाल की जिस प्रबल वायु से अन्य पर्वत चल विचल हो जाते हैं उस वायु से क्या कभी मन्दराचल (सुमेरु पर्वत) का शिखर भी चलायमान होता है ? (कभी नहीं) ॥१५॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो दस पुव्वीणं ।

मंत्र—ॐ नमो भगवती गुणवती सुसीमा पृथ्वी वज्र-श्रृङ्खला मानसी महामानसी स्वाहा ।

No wonder that Your mind was not in the least perturbed even by the celestial damsels. Is the peak of Mandaramountain ever shaken by the mountain shaking winds of Doomsday ? 15.

सर्व-विजय-दायक

निर्धूम-वर्त्ति-रपवर्जित-तैलपूरः,

कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटी-करोषि ।

गम्यो न जातु मरुतां चलिता-चलानां,

दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाशः ॥१६॥

धूमरहित वातीगतनेह, परकाशै त्रिभुवन घर एह ।

वात-गम्य नाहीं परचण्ड, अपर दीप तुम बलो अखण्ड ॥

अर्थ—हे त्रिभुवनदीपक—साधारण दीपक तो तेल और बत्ती से जलता है, धुआँ देता है, थोड़े स्थान में प्रकाश करता है और वायु के झकोरे से बुझ जाता है परन्तु आप ऐसे अनोखे दीपक हैं कि न तो आपको तेल और बत्ती की आवश्यकता होती है, न आपसे काला धुआं निकलता है, और न पर्वतों को भी हिला देने वाली वायु से आपकी ज्योति बुझ सकती है तथा आप तीन लोकों को अपनी ज्योति से प्रकाशित कर देते हैं ॥१६॥

ऋद्धि ॐ ह्रीं अर्हं णमो चउदस पुव्वीणं ।

मंत्र—ॐ नमः सुमंगला सुसीमा नाम देवी सर्वं समीहितार्थं वज्र-शृङ्खलाँ कुरु कुरु स्वाहा ।

Thou art, O Lord ! an unparalled lamp—as it were, the very light of the universe—which, though devoid of smoke, wick and oil, illumines all the three worlds and is invulnerable even to the mountain-shaking winds. 16.

सर्व उदर पीड़ा नाशक

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहु-गम्यः,
स्पष्टी-करोषि सहसा युगपज्जगन्ति ।
नाम्भोधरोदर-निरुद्ध-महा-प्रभावः,
सूर्यातिशायि-महिमासि मुनीन्द्र लोके ॥१७॥

छिपहु न लुपहु राहु की छांहि, जग-परकाशक हो छिन मांहि ।
घन-अनवर्त दाह विनिवार, रवि तैं अधिक धरो गुणसार ॥

अर्थ—हे मुनिनाथ ! आप सूर्य से भी अधिक महिमाशाली हैं क्योंकि आप न तो कभी अस्त होते हैं, न राहु के ग्रहण में आते हैं और न बादल आपका प्रभाव रोक सकते हैं तथा आप अपनी ज्ञान-ज्योति द्वारा एक साथ तीनों लोकों को प्रकाशित करते हैं। (सूर्य तो चार पहर पीछे अस्त हो जाता है, उसको राहु ग्रहण कर लेता है, बादलों से उसका प्रकाश रुक जाता है तथा वह प्रकाश भी सीमित क्षेत्र में करता है) ॥१७॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अठ्ठांग महा-णिमित्त-कुशलाणं ।

मंत्र—ॐ नमो नमिऊण अट्ठे मट्ठे क्षुद्रविघट्ठे क्षुद्रपीड़ा जठर-पीड़ा भञ्जय २ सर्वपीड़ा सर्वरोग-निवारणं कुरु कुरु स्वाहा ।

O Great Sage, Thou knowest no setting, nor art Thou eclipsed by Rahu. Thou dost illumine suddenly all the worlds at one and the same time. The water-carrying clouds too can never bedim Thy great glory. Hence in respect of effulgence Thou art greater than the sun in this world. 17.

शत्रु सेना स्तम्भक

नित्योदयं दलित-मोह-महान्धकारं ।
गम्यं न राहु-वदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्ज-मनल्प-कान्ति,
विद्योतयज्-जगदपूर्व-शशांक-विम्बम् ॥१८॥

सदा उदित विदलित मनमोह, विघटित मेघ राहु-अवरोह ।
तुम मुख कमल अपूरव चन्द, जगत विकाशी जोति अमन्द ॥

अर्थ—हे भगवन् ! महाकान्तिमान आपका मुखकमल अपूर्व अद्भुत चन्द्रमण्डल की तरह शोभित हो जाता है क्योंकि वह सदा उदीयमान रहता है (कभी अस्त नहीं होता), मोह अन्धकार को नष्ट करता है, राहु और बादलों से कभी छिपता नहीं है और समस्त जगत् को प्रकाशित करता है ॥१८॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो विउयण-यड्ढि-पत्ताणं ।

मंत्र—ॐ नमो भगवते जय विजय मोहय मोहय स्तम्भय स्तम्भय स्वाहा ।

Thy lotus like countenance,—which rises eternally, destroys the great darkness of ignorance, is accessible neither to the mouth of Rahu nor to the clouds; possesses great luminosity,—is the universe-illuminating peerless moon. 18.

जादू-टोनादि-प्रभाव नाशक

किं शर्वरीषु शशिनान्हि विवस्वता वा,
युष्मन्मुखेन्दु-दलितेषु तमःसु नाथ।
निष्पन्न-शालि-वन-शालिनि जीव-लोके,
कार्यं कियज्-जलधरैर्जल-भारनम्रैः ॥१९॥

निशदिन शशि रविको नहिं काम, तुम मुखचन्द हरै तम धाम
जो स्वभावतैं उपजे नाज, सजल मेघ तैं कौनहु काज।

अर्थ—हे नाथ! आपके मुखचन्द्र द्वारा जब जनता का मोह-अज्ञान-अन्धकार नष्ट हो गया तो दिन के समय सूर्य और रात्रि के समय चन्द्रमा से कुछ प्रयोजन नहीं रहा। धान्य के पक जाने पर संसार में जल से भरे हुए बादलों की क्या आवश्यकता है? ॥१९॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो विज्जाहराणं।

मंत्र—ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः य क्ष ह्रीं वषट् नमः स्वाहा।

When Thy lotus-likk face, O Lord, has destroyed the darkness, what's the use of the sun by the day and moon by the night? What's the use of clouds heavy with the weight of water, after the ripening of the paddy-fields in the world. 19.

सन्तान-लक्ष्मी-सौभाग्य-विजय-बुद्धिदायक

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं
नैवं तथा हरि-हरादिषु नायकेषु।
तेजःस्फुरन्मणिषु याति यथा महत्वं,
नैवं तु काच-शकले किरणा-कुलेऽपि ॥२०॥

जो सुबोध सोहै तुम मांहि, हरि हर आदिक में सो नाहिं।
जो द्युति महा रतन में होहि, कांच खण्ड पावै नहिं सोय ॥

अर्थ— हे प्रभो ! जैसा पूर्ण ज्ञान आप में विद्यमान है वैसा हरि हर आदि अन्य किसी में नहीं है। जिस तरह की महत्वपूर्ण कान्ति रत्नों में होती है वैसी कान्ति चमकीले कांच के टुकड़े में नहीं मिलती ॥२०॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो चारणाणं।

मंत्र—ॐ श्रां श्रीं श्रूं श्रः शत्रु-भय-निवारणाय ठः ठः नमः स्वाहा।

Knowledge abiding in the Lords like Hari and Hara does not shine so brilliantly as it does in You. Effulgence, in a piece of glass, though filled with rays, the rays never attains that glory, which it does in sparkling gems, 20.

सर्व वशीकरण

मन्ये वरं हरि-हरादय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति ।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि ॥२१॥

नाराच छन्द

सराग देव देख मैं भला विशेष मानिया,
स्वरूप जाहि देख वीतराग तू पिछानिया ।
कछू न तोहि देख के जहाँ तुही विशेखिया,
मनोग चित्त चोर और भूल हू न पेखिया ॥

अर्थ—हे नाथ ! मैं ऐसा समझता हुं कि मैंने हरि हर आदि देवों के दर्शन किए सो अच्छा हुआ, क्योंकि उनके (रागी देवों के) देख लेने पर मेरा मन आप में सन्तुष्ट हो गया। आपके दर्शन कर लेनें पर वैसा कुछ न हुआ। क्योंकि फिर कोई भी अन्य देव मेरा मन अपनी ओर आकर्षित न कर सका ॥२१॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो पण्ण-समणाणं ।

मंत्र—ॐ नमः श्रीं मणिभद्र जय विजय अपराजिते सर्व-सौभाग्यं सर्वसौख्यं कुरु कुरु स्वाहा ।

Assuredly great, I feel, is the sight of Hari, Hara, and other gods, but seeing them the heart finds satisfaction only in You. What happens on seeing You on Earth. None else, even through all the future lives, shall be able to attract my mind. 21.

भूत-पिशाचादि व्यन्तर बाधा निरोधक

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्-
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्र-रश्मिं,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुर-दंशु-जालम् ॥२२॥

अनेक पुत्रवंतिनी नितम्बिनी सपूत हैं,
न तो समान पुत्र और मात तें प्रसूत हैं।
दिशा धरंत तारिका अनेक कोटि को गिनै,
दिनेश तेजवन्त एक पूर्व ही दिशा जनै॥

अर्थ—हे देव ! संसार में सैकड़ों स्त्रियाँ सैकड़ों पुत्र पैदा करती हैं परन्तु आपके समान पुत्र को आपकी माता ही उत्पन्न करती है, अन्य कोई माता उत्पन्न नहीं कर सकती। जैसे प्रभापुंज-सूर्य की किरणों को तो सभी दिशायें धारण करती हैं परन्तु उस सूर्य का उदय केवल पूर्व दिशा ही किया करती है ॥२२॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो आगास-गामिणं।

मंत्र—ॐ नमो श्री वीरेहिं जृम्भय जृम्भय मोहय मोहय स्तम्भय स्तम्भय अवधारणं कुरु कुरु स्वाहा।

Though all the directions do possess stars, yet it is only the eastern direction which gives birth to the thousand-rayed (sun), whose pencils of rays shine forth brilliantly. So do hundreds of mothers give birth to hundreds of sons, but there is no other mother who gave birth to a son like You 22.

प्रेत बाधा निवारक

त्वामा-मनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्य-वर्ण-ममलं तमसः पुरस्तात्
त्वामेव सम्य-गुपलभ्य जयन्ति मृत्युं,
नान्यः शिवः शिव-पदस्य मुनीन्द्र पन्थाः ॥२३॥

पुरान हो पुमान हो पुनीत पुण्यवान हो,
कहैं मुनीश अन्धकार नाश को सुभान हो ।
महंत तोहि जानि के न होय वश्य काल के,
न और कोइ मोख मन्थ देय तोहि टाल के ॥

अर्थ—हे मुनिनाथ ! मुनिगण आपको महान् पुरुष, अन्धकार-हारक निर्मल सूर्य कहते हैं। मुनिगण आपकी उपासना करके मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। आपकी उपासना के सिवाय अन्य कोई मोक्ष का सुखदायी मार्ग भी तो नहीं है ॥२३॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो आसी-विसाणं ।

मन्त्र ॐ नमो भगवती जयावती मम समीहितार्थं मोक्ष-सौख्यं कुरु कुरु स्वाहा ।

The great sages consider You to be the Supreme Being, Who possesses the effulgence of the sun, is free from blemishes, and is beyond darkness. Having perfectly realized You, men even conquer death. O Sage of sages ! there is no other auspicious path (except You) leading to Supreme Blessedness, 23.

शिर पीड़ा नाशक

त्वा-मव्ययं विभु-मचिन्त्य-मसंख्य-माद्यं,
ब्रह्माण-मीश्वर-मनन्त-मनंग केतुम् ।
योगीश्वरं विदित-योग-मनेक-मेकं,
ज्ञान-स्वरूप-ममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥२४॥

अनन्त नित्य चित्त के अगम्य रम्य आदि हो,
असंख्य सर्वव्यापि विष्णु ब्रह्म हो अनादि हो ।
महेश कामकेतु योग-ईश योग ज्ञान हो,
अनेक एक ज्ञानरूप शुद्ध सन्त-मान हो ॥

अर्थ –हे स्वामिन् ! गणधरादिक आपको अव्यय (अविनाशी), विभु (ज्ञान द्वारा सर्वव्यापक), अचिन्त्य (पूर्णरूप से न जान सकने रूप) असंख्य (जिसके गुण न गिने जा सकें), आद्य (समस्त पूज्य देवों में प्रथम) ब्रह्मा (मोक्ष मार्ग के बनाने वाला), ईश्वर (समस्त आत्मविभूति के स्वामी या तीन लोंक के नाथ), अनन्त (जिसका अंत न हो), अनङ्गकेतु (शरीर रहित या अनुपम सुन्दर), योगीश्वर, योग-ज्ञाता (आत्मशुद्धि की विधि जानने वाले). अनेक (गुणों की अपेक्षा), एक (आत्मा की अपेक्षा), ज्ञान रूप और पूर्ण निर्मल कहते हैं । ॥२४॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो दिट्ठि-विसाणं ।

मन्त्र—स्थावर जंगम वायकृतिमं सकलविषं यद्भक्तेः अप्रणमिताय ये दृष्टिविषयान्मुनीन्ते वढ़्ढमाण-स्वामी सर्वहितं कुरु कुरु स्वाहा । ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा झ्रां झ्रौं स्वाहा ।

The righteous consider You to be immutable omnipotent, incomprehensible, unumbered, the first, Brahma, the supreme Lord Siva, endless, the enemy of Ananga (Cupid), lord of yogis, the knower of yoga, many, one, of the nature of knowledge, and stainless. 24.

नज़र (दृष्टि दोष) नाशक

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित-बुद्धि-बोधा-
त्वं शंकरोऽसि भुवन-त्रय-शंकरत्वात ।
धातासि धीर शिव-मार्ग-विधेर्-विधानात्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोऽसि ।।२५।।

तुही जिनेश बुद्ध है सुबुद्धि के प्रमानतें,
तुही जिनेश शंकरो जगत्त्रयी विधानतें ।
तुही विधात है सही सुमोख पंथ धारतें,
नरोत्तमो तुही प्रसिद्ध अर्थ के विचारतें ।।

अर्थ—हे भगवन् ! आप ही 'बुद्ध' हैं क्योंकि आपकी बुद्धि या ज्ञान गणधर आदि विद्वानों तथा इन्द्र आदि से पूजनीय है । आप ही यथार्थ 'शङ्कर' हैं क्योंकि आप अपनी प्रवृत्ति तथा उपदेश से तीनों लोकों में शान्ति कर देते हैं । हे धीर ! आप ही सच्चे 'विधाता' हैं क्योंकि आपने मुक्ति मार्ग का विधान किया है और आप ही सबसे उत्तम होने के कारण 'पुरुषोत्तम' हैं ।।२५।।

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो उग्ग-तवाणं ।

मन्त्र—ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा झ्रां झ्रौं स्वाहा ॐ नमो भगवते जयविजयापराजिते सर्वसौभाग्यं सर्वसौख्यं कुरु कुरु स्वाहा ।

As Thou possessest that knowledge which is adored by gods, Thou indeed art Buddha, as Thou dost good to all the three worlds, Thou art Shankara; as Thou prescribest the process leading to the path of Salvation, Thou art Vidhata; and Thou, O Wise Lord, doubtless art Purushottama. 25.

आधा शीशी (सिर दर्द) एवं प्रसूति पीड़ा नाशक

तुभ्यं नम स्त्रिभुवनार्ति-हराय नाथ,
तुभ्यं नमः क्षिति-तलामल-भूषणाय।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिन भवोदधि-शोषणाय ।।२६।।

नमों करूं जिनेश तोहि आपदा-निवार हो,
नमों करूं सुभूरि भूमि-लोक के सिंगार हो।
नमों करूं भवाब्धि-नीर-राशि-शोष हेतु हो,
नमों करूं महेश तोहि मोखपंथ देतु हो ।।

अर्थ—हे जिनेन्द्रदेव ! हे नाथ ! तीन लोक के संकटों को दूर करने वाले आपको मैं नमस्कार करता हूं। जगत के निर्मल अनुपम आभूषण स्वरूप आपको मैं प्रणाम करता हूँ। तीन जगत के स्वामी तुम्हें प्रणाम है। और संसार समुद्र के सुखाने वाले आपको नमस्कार है ।।२६।।

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो दित्त-तवाणं।

मन्त्र—ॐ नमो ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रूं ह्रूं परजन-शान्ति-व्यवहारे जयं कुरु कुरु स्वाहा।

Salutation unto Thee, the ispeller of the sufferings of all the three worlds; salutation unto Thee, the bright jewel of the earth; obeisance to Thee, the Supreme Lord of all the three worlds; reverence unto Thee, O Jina ! Who dries up the ocean of relative existence. 26.

शत्रुकृत—हानि निरोधक

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै-
स्त्वं संश्रितो निरवकाश-तया मुनीश ।
दोषै-रुपात्त-विविधाश्रय-जात-गर्वैः,
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिद-पीक्षितोसि ।।२७।।

चौपाई

तुम जिन पूरण गुणगण भरे, दोष गर्व करि तुम परिहरे ।
और देवगण आश्रय पाय, स्वप्न न देखे तुम फिर आय ।।

अर्थ—हे मुनीश्वर ! इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं कि आप समस्त गुणों से परिपूर्ण हैं । राग द्वेष काम क्रोध मान माया लोभ आदि दोष अन्य देवों का आश्रय पाकर गर्वीले (घमण्डी) हो गये हैं । अत: वे दोष आपके पास कभी स्वप्न में भी नहीं आते । ।।२७।।

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो तत्त-तवाणं ।

मन्त्र—ॐ नमो चक्रेश्वरी देवी चक्रधारिणी चक्रेण अनुकूलं साधय साधय शत्रून् उन्मूलय उन्मूलय स्वाहा ।

No wonder that, after finding space nowhere, You have, O Great Sage !, been resorted to by all the excellenes; and in dreams even Thou art never looked at by blemishes, which, having obained many resorts, have become inflated with pride. 27.

सर्व कार्य सिद्धि दायक

उच्चैर-शोक-तरु-संश्रित-मुन्मयूख-
माभाति रूप-ममलं भवतो नितान्तम् ।
स्पष्टोल्लसत्-किरणमस्त-तमोवितानं,
विम्बं रवेरिव पयोधर-पार्श्ववर्ति ।।२८।।

तरु अशोक तल किरण उदार, तुम तन शोभित है अविकार ।
मेघ-निकट ज्यों तेज फुरंत, दिनकर दिपै तिमिर निहनंत ।।

अर्थ–हे भगवन् ! ऊँचे अशोक वृक्ष (प्रातिहार्य) के नीचे आपका निर्मल कान्तिमान शरीर बहुत शोभा देता है । जैसे कि अन्धकार नष्ट करके किरण सहित सूर्य-बिम्ब बादलों के पास शोभित होता है ।।२८।।

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो महा-तवाणं ।

मन्त्र—ॐ नमो भगवते जय विजय जृम्भय जृम्भय मोहय मोहय सर्व-सिद्धि-सम्पत्ति-सौख्यं कुरु कुरु स्वाहा ।

Thy shining form, the rays of which go upwards, and which is really very much lustrous and dispels the expanse of darkness, looks excellently beautiful under the Ashoka-tree like the orb of the sun by the side of clouds. 28.

नेत्र पीड़ा व बिच्छू विष नाशक

सिंहासने मणि-मयूख-शिखा-विचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनका-वदातम् ।
विम्बं वियद्-विलस-दंशु-लता-वितानं,
तुंगोदयाद्रि-शिरसीव सहस्र-रश्मेः ॥२९॥

सिंहासन मणि किरण विचित्र, तापर कंचन वरण पवित्र ।
तुम तन शोभित किरण विथार, ज्यों उदयाचल रवि तमहार

अर्थ—हीरा, पन्ना, लाल, नीलम, पुखराज आदि अनेक प्रकार के रत्नों से जड़ित सिंहासन पर आपका सुवर्ण समान शरीर बहुत शोभा पाता है। जैसे उन्नत उदयाचल के शिखर पर फैली हुई अपनी किरणों के साथ सूर्य का बिम्ब शोभित होता है ॥२९।

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं-णमो घोर-तवाणं ।

मन्त्र—ॐ णमो णमिऊण पासं विसहर फुलिंगमंतो विसहर-नाम रकार मंतो सर्वसिद्धि-मोहे इह समरंताण मण्णे-जागई कप्प-द्दुमच्चं सर्वसिद्धिः ॐ नमः स्वाहा ।

Thy gold-lustred body shines verily on the throne like the disc of the sun on the summit which is variegated with the mass of rays of gems, of the high Rising-mountain, the rays of which (disc), spreading in the firmament like a creeper, look (cxceedingly) graceful. 29.

शत्रु स्तम्भक

कुन्दावदात-चल-चामर-चारु-शोभं,
विभ्राजते तव वपुः कलधौत-कान्तम् ।
उद्यच्छशांक-शुचि-निर्झर-वारि-धार—
मुच्चैस्तटं सुर-गिरेरिव शात-कौम्भम् ।।३०।।

कुन्द पुहुप सित-चमर ढुरंत, कनक-वरन तुम तन शोभंत ।
ज्यों सुमेरु तट निर्मल कांति, झरना झरै नीर उमगांति ।।

अर्थ—हे प्रभो ! इन्द्रों द्वारा कुन्द पुष्प के समान सफेद चंमर आप पर ढुरते समय आपका तपे हुए सोने के समान शरीर ऐसा शोभायमान होता है जैसे चन्द्र समान निर्मल जल की धारा से सुवर्णमय सुमेरु पर्वत का ऊँचा तट (किनारा) सुशोभित होता है ।।३०।।

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोर-गुणाणं ।

मन्त्र—ॐ नमो अट्ठे मट्ठे क्षुद्रविघट्ठे क्षुद्रान् स्तम्भय स्तंम्भय रक्षां कुरु कुरु स्वाहा ।

Thy gold-lustred body, to which grace has been imparted by the waving chowries which is as white as the Kunda-flower, shines like the high golden brow of Sumeru-mountain, on which do fall the streams of rivers which are bright with (like) the rising moon. 30.

राज्य सम्मान दायक व चर्म रोग नाशक

छत्र-त्रयं तव विभाति शशांक-कान्त—
मुच्चैः स्थितं स्थगित-भानु-कर-प्रतापम् ।
मुक्ता-फल-प्रकर-जाल-विवृद्ध-शोभं,
प्रख्यापयत्-त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ।।३१।।

ऊँचे रहैं सूर-दुति लोप, तीन छत्र तुम दिपै अगोप ।
तीन लोक की प्रभुता कहैं, मोती झालर सों छवि लहैं ।।

अर्थ—हे ईश ! चन्द्रमा समान कान्तिमान, सूर्य की धूप को रोकने वाले, मोतियों की झालर से शोभायमान, आपके ऊपर ऊँचे लगे हुए तीन छत्र आपकी तीन जगत् को प्रभुता को प्रगट करते हुए बहुत शोभा देते हैं ।।३१।।

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोर गुण-परक्कमाणं ।

मन्त्र—ॐ उवसग्गहरं पासं वंदामि कम्म-घण-मुक्कं विसहर-विस-णिण्णासिणं मंगल-कल्लाण आवासं ॐ ह्रीं नमः स्वाहा ।

The three umbrellas charming like the moon, which are held high above Thee, and the beauty of which has been enhanced by the net-work of pearls and which obstructs the heat of the sun's rays, looks very beautiful, proclaiming, as it were, Thy supreme lordship over all the three worlds. 31.

संग्रहणी आदि, उदर पीड़ा नाशक

गम्भीर-तार-रव-पूरित-दिग्वभाग-
स्त्रैलोक्य-लोक-शुभ-संगम-भूति-दक्षः ।
सद्धर्म-राज-जय-घोषण-घोषकः सन्,
खे दुन्दुभिर्-ध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥३२॥

दुन्दुभि शब्द गहर गंभीर, चहुं दिश होय तुम्हारे धीर ।
त्रिभुवन-जन शिव संगम करै, मानूं जय जय रव उच्चरैं ॥

अर्थ—हे परमात्मन् ! आकाश में अपनी गम्भीर, तेज, मधुर ध्वनि-द्वारा समस्त दिशाओं को शब्दायमान करके, त्रिलोकवर्ती जीवों को शुभ संगम कराने वाला, आपकी जयध्वनि करता हुआ, आपके यश को घोषित करने वाला आपका प्रातिहार्य-रूप दुन्दुभि बाजा बजता है ॥३२॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोर गुण बंभचारिणं ।

मन्त्र—ॐ नमो ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः सर्व-दोष-निवारणं कुरु कुरु स्वाहा ।

There sounds in the sky the celestial drum, which fills the directions with its deep and loud note, and which is capable of bestowing glory and prosperity on all the beings of the three worlds, and which proclaims the victory-sound of the lord of supreme righteousness. proclaiming Thy fame. 32.

सर्व ज्वर नाशक

मन्दार-सुन्दर-नमेरु-सुपारिजात
सन्तानकादि-कुसुमोत्कर-वृष्टिरुद्धा ।
गन्धोद-बिन्दु-शुभ-मन्द-मरुत्प्रपाता,
दिव्या दिवः पतति ते वयसां ततिर्वा ॥३३॥

मन्द पवन गन्धोदक इष्ट, विविध कल्पतरु पुहुप सुवृष्ट ।
देव करैं विकसित दल सार, मानों द्विज पंकति अवतार ॥

अर्थ—हे नाथ ! सुगन्धित जल बिन्दुओं और मन्द पवन के साथ, मंदार, नमेरु, पारिजात आदि कल्पवृक्षों के पुष्पों की मनोहर वर्षा आपके ऊपर देवों के द्वारा आकाश में ऐसी होती है, मानों पक्षियों की पंक्ति ही है ॥३३॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहि पत्ताणं ।

मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लूं ध्यान-सिद्धि-परम-योगीश्वराय नमो नमः स्वाहा ।

Like Thy divine utterances falls from the sky the shower of celestial flowers such as the Mandara, Nameru, Parijata and Santanaka accompanied by gentle breeze that is made charming with scented water drops 33.

गर्भ रक्षक

शुम्भत्प्रभा-वलय-भूरि-विभा विभोस्ते,
लोकत्रये द्युतिमतां द्युतिमा-क्षिपन्ती ।
प्रोद्यद्दिवाकर-निरन्तर-भूरि-संख्या,
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोम-सौम्याम् ।३४।

तुम तन भामण्डल जिनचंद, सब दुतिवन्त करत है मंद ।
कोटि शंख रवितेज छिपाय, शशि निर्मल निशि करे अछाय ।।

अर्थ—हे भगवन् ! आपके शरीर से निकली हुई कान्ति का गोलाकार मण्डल यानी भामण्डल जगत् के सभी प्रकाशमान पदार्थों की कांति को फीका कर देता है। करोड़ों सूर्यों के एकत्रित प्रकाश से भी अधिक प्रकाशमान भामण्डल की प्रभा से चांदनी रात भी फीकी हो जाती है ।।३४।।

अर्थात् भामण्डल का प्रकाश सूर्य और चन्द्र से भी अधिक होता है ।

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो खिल्लो-सहि-पत्ताणं ।

मन्त्र—ॐ नमो ह्रीं श्रीं ऐं ह्रौं पद्मावत्यै देव्यै नमो नमः स्वाहा ।

O Lord ! Thine luminous halo, endowed with great effulgence, surpasses the lustre of all the luminaries in the worlds; and though it (Thine halo) is made up of the radiance of many suns rising simultaneously, yet it outshines the night decorated with the gentle lustre of the moon, 34.

दुर्भिक्ष चोरी मिरगी आदि निवारक

स्वर्गा-पवर्ग-गममार्ग-विमार्गणेष्टः,

सद्धर्म-तत्त्व-कथनैक-पटुस्-त्रिलोक्याः ।

दिव्य-ध्वनिर्-भवति ते विशदार्थ-सर्व-

भाषा-स्वभाव-परिणाम-गुणैः प्रयोज्यः ॥३५॥

स्वर्ग मोक्ष मारग संकेत, परम धरम उपदेशन हेत ।
दिव्य वचन तुम खिरें अगाध, सब भाषा-गर्भित हितसाध ॥

अर्थ—हे परमदेव ! आपकी दिव्यवाणी स्वर्ग मोक्ष का मार्ग बताने वाली तथा जगत के लिये हितकर सत्धर्म, सात तत्त्व, नौ पदार्थ आदि का यथार्थ विशद कथन करने वाली एवं श्रोताओं की भाषामयी होती है ॥३५॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो जल्लो-सहि-पत्ताणं ।

मंत्र—ॐ नमो जयविजय अपराजिते महालक्ष्मी अमृतवर्षिणी अमृतस्राविणी अमृतं भव भव वषट् सुधाय स्वाहा ।

Thy divine voice, which is sought by those who wish to tread the path of emancipation leading to Heaven and Salvation and which alone can expound the truth of the Supreme religion, is endowed with those natural qualities which trsnsform it (Divya-dhwani) into all the languages capable of clear meaning. 35.

सम्पत्ति-दायक

उन्निद्र-हेम-नवपंकजपुञ्ज-कान्ती,

पर्युल्लसन्नख-मयूख-शिखा-भिरामौ ।

पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र धत्तः,

पद्मानि तत्र विबुधा परि-कल्पयन्ति ॥३६॥

विकसित सुवरन कमल-दुति, नख-दुति मिलि चमकाहिं ।

तुम पद पदवी जहं धरैं, तहं सुर कमल रचाहिं ॥

अर्थ—हे जिनेन्द्र ! विहार करते समय विकसित सुवर्ण कमल की कान्ति को अपने चरणों के नखों (नाखूनों) की कान्ति से सुन्दर कर देने वाले आपके चरण जहां पड़ते हैं वहां पर देव पहले ही सुवर्णमय कमल बनाते जाते हैं ॥३६॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो विप्पो सहि-पत्ताणं ।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं कलिकुण्ड-दण्ड-स्वामिन् आगच्छ आगच्छ आत्ममंत्रान् आकर्षय आकर्षय आत्ममंत्रान् रक्ष रक्ष परमंत्रान् छिन्द छिन्द मम समीहितं कुरु कुरु स्वाहा ।

Gods, O visualize ! create lotuses, wherever Thy feet, having the lustre of a collection of newly-blown golden lotuses and to which charm has been imparted by the lustre of the shining nails, are placed. 36.

दुर्जन वशीकरण

इत्थं यथा तव विभूति-रभूज्जिनेन्द्र,
धर्मोप-देशन विधौ न तथा परस्य ।
यादृक् प्रभा दिनकृतः प्रहृतान्ध-कारा,
तादृक्कुतो ग्रह-गणस्य विकासिनोपि ॥३७॥

जैसी महिमा तुम विषैं, और धरैं नहिं कोय ।
सूरज में जो जोति है, नहिं तारागण होय ॥

अर्थ—हे जिनेन्द्र देव ! इस प्रकार धर्म उपदेश देते समय अष्ट प्रातिहार्य रूप जैसी विभूति आपकी होती है उस तरह की विभूति अन्य किसी धर्म-उपदेशक के उपदेश करते समय नहीं होती । ठीक है, जैसी अन्धकारनाशिनी प्रभा सूर्य की होती है वैसी चमकते हुए भी तारों की नहीं होती ॥३७।

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहि-पत्ताणं ।

मंत्र—ॐ नमो भगवते अप्रतिचक्रे ऐं क्लीं ब्लूं ॐ ह्रीं मनोवांछित-सिद्धयै नमो नमः अप्रतिचक्रे ह्रीं ठः ठः स्वाहा ।

The glory, which Thou attained at the time of giving instruction in religious matters, is attained, O Jinendra ! by nobody else. How can the lustre of the shininig planets and stars be so (bright) as the darkness-destroying effulgence of the sun ? 37.

हाथी वशीकरण

श्च्योतन्-मदा-विल-विलोल-कपोल-मूल—
मत्त-भ्रमद्-भ्रमर-नाद-विवृद्ध-कोपम् ।
ऐरावताभ-मिभ-मुद्धत-मापतन्तं,
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदा-श्रितानाम् ॥३८॥

मद-अवलिप्त-कपोल-मूल अलि कुल झंकारैं,
तिन सुन शब्द प्रचण्ड क्रोध उद्धत अति धारैं ।
काल वरन विकराल कालवत सन्मुख आवै,
ऐरावत सौ प्रबल सकल जन भय उपजावै ॥
देखि गयन्द न भय करै, तुम पद महिमा लीन ।
विपति-रहित संपति सहित, वरतैं भक्त अदीन ॥

अर्थ—हे प्रभो ! जिसके कपोल (गाल) से झर रहे मद पर भौंरे गून्ज रहे हैं, अतः भौंरों की गुन्जार सुनकर जिसको प्रचण्ड क्रोध आ गया है, ऐसे मदोन्मत्त ऐरावत-जैसे हाथी को भी देखकर आपके आश्रित भक्तों को जरा भी भय नहीं होता ॥३८॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो मणवलीणं ।

मंत्र—ॐ नमो भगवते अष्ट महा-नाग-कुलोच्चाटिनी काल-दष्ट-मृतकोत्थापिनी परमंत्र प्रणाशिनी देवि शासनदेवते ह्रीं नमो नमः स्वाहा ।

Those, who have resorted to You, are not afraid even at the sight of the Airavata-like infuriated elephant, whose anger has been increased by the buzzing sound of the intoxicated bees hovering about its cheeks soiled with the flowing rut, and which rushes forward. 38.

सिंह भय निवारक

भिन्नेभ-कुम्भ-गल-दुज्ज्वल-शोणिताक्त-
मुक्ताफल-प्रकर-भूषित-भूमिभागः ।
बद्ध-क्रमः क्रम-गतं हरिणा-धिपोऽपि,
नाक्रामति क्रम-युगाचल-संश्रितं ते ॥३९॥

अति मदमत्त गयन्द कुम्भथल नखन विदारै,
मोती रक्त समेत डारि भूतल सिंगारै ।
बांकी दाढ़ विशाल वदन में रसना लोलै,
भीम भयानक रूप देखि जन थरहर डोलै ॥
ऐसे मृगपति पद तलैं, जो नर आयो होय ।
शरण गहे तुम चरण की, बाधा करै न सोय ॥

अर्थ—हे विभो ! हाथी के मस्तक को अपने नाखूनों से फाड़कर जिसने रक्त से भीगे गजमुक्ताओं (मोतियों) से पृथ्वी सजा दी है, तथा शिकार करने के लिये तैयार, ऐसा विकराल सिंह अपने पंजों में आये हुए आपके चरणों की शरण लेने वाले मनुष्य पर आक्रमण नहीं करता है ।,३९॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो वचवलीणं ।

मंत्र—ॐ नमो एषु वृत्तेषु वर्द्धमान तव भयहरं वृत्तिवर्णयिषु मंत्रा पुनः स्मर्तव्या अतोना-परमंत्र-निवेदनाय नमः स्वाहा ।

Even the lion, which has decorated a part of the earth with the collection of pearls besmeared with bright blood flowing from the pierced heads of the elephants, though ready to pounce, does not attack the traveller who has resorted to the mountain of Thy feet. 39.

अग्नि भय निवारक

कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-वह्नि-कल्पं,
दावानलं ज्वलित-मुज्ज्वल-मुत्स्फुलिंगम् ।
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुख-मापतन्तं,
त्वन्नाम-कीर्तन-जलं शमयत्य-शेषम् ।।४०।।

प्रलय पवन कर उठी आग जो तास पटंतर,
वमैं फुलिंग शिखा-उत्तङ्ग परजलैं निरंतर ।
जगत समस्त निगल्ल भस्म करहैगी मानौं,
तड़तड़ात दव अनल जोर चहुँ दिशा उठानौं ।।
सो इक छिन में उपशमें, नाम नीर तब लेत ।
होय सरोवर परिणमैं, विकसित कमल समेत ।।

अर्थ—हे भगवन् ! प्रलय-समय जैसी तेज वायु से धधकती हुई वन की अग्नि, जिसमें कि भयानक फुलिंग (चिनगारे) बहुत ऊंचे निकल रहे हों ऐसी भयानक हो कि मानो सारे संसार को भस्म कर डालेगी, उसके सामने आजाने पर हृदय में लिया हुआ आपका नाम-रूपीजल तत्काल उसको बुझाकर शान्त कर देता है ।।४०।।

ऋद्धि– ॐ ह्रीं अर्हं णमो कायवलीणं ।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रां ह्रीं अग्निमुपशमनं शान्ति कुरु कुरु स्वाहा ।

The conflagration of the forest, which is equal to the fire fanned by the winds of the doomsday and which emits bright burning sparks and which advances forward as if to devour the world, is totally extinguished by the recitation of Thy name. 40.

सर्प विष निवारक

रक्तेक्षणं समद-कोकिल-कण्ठ-नीलं,
क्रोधोद्धतं फणिन-मुत्फण-मापतन्तम् ।
आक्रामति क्रमयुगेण निरस्त-शंकस्-,
त्वन्नाम-नाग-दमनी हृदि यस्य पुंसः ॥४१॥

कोकिल-कंठ-समान श्याम तन क्रोध जलंता,
रक्तनयन फुंकार मार विषकण उगलंता ।
फण को ऊँचौ करै वेग ही सन्मुख धाया,
तब जन होंय निशंक देखि फणिपति को आया ॥
जो चांपै निज पग तलैं, व्यापै विष न लगार ।
नाग-दमनि तुम नाम की, है जिनके आधार ॥

अर्थ—हे विश्वपते ! उन्मत्त कोयल के कंठ के समान काला, क्रोध से उद्धत, लाल नेत्र किये, फण को ऊंचा उठाये भयानक सर्प आक्रमण करे तो वह मनुष्य निःशंक (निश्चिन्त) बना रहता है जिसके हृदय में आपके पवित्र नामरूपी सर्प-दमन करने वाली अमोघ औषधि विद्यमान है ॥४१॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो खीर-सवीणं ।

मंत्र—ॐ नमो श्रां श्रीं श्रूं श्रौं श्रः जलदेवि कमले पद्महृद-निवासिनी पद्मोपरि-संस्थिते सिद्धि देहि मनोवांछितं कुरु कुरु स्वाहा ।

The man, in whose heart abides the Mantra that subdues serpents, viz., Your name can intrepidly go near the snake, which has its hood expanded, eyes blood-shot, and which is haughty with anger and is black like the throat of the passionate cuckoo. 41.

युद्ध भय निवारक

वल्गत्तुरंग-गज-गर्जित-भीम-नाद-
माजौ बलं बलवतामपि भू-पतीनाम् ।
उद्यद्-दिवाकर-मयूख-शिखा-पविद्धं,
त्वत्कीर्त्तनात्-तम इवाशु भिदा-मुपैति ॥४२॥

जिस रनमाँहि भयानक शब्द कर रहे तुरङ्गम,
घन से गज गरजाँहि मत्त मानो गिरि जंगम ।
अति कोलाहल माँहि बात जस नांहि सुनीजै,
राजन को परचण्ड देखि बल धीरज छीजै ॥
नाथ तिहारे नामतैं, अघ छिनमाँहि पलाय ।
ज्यों दिनकर परकाशतैं, अन्धकार विनशाय ॥

अर्थ—हे विश्व उद्धारक देव ! जहाँ घोड़े भयानक हींस रहे हैं, हाथी चिघाड़ रहे हैं, (भयानक अस्त्र शस्त्र चल रहे हैं) घमासान लड़ाई से उड़ती हुई धूल ने सूर्य का प्रकाश भी छिपा दिया है, ऐसी भयानक युद्धभूमि में आपका स्मरण करने से बलवान् राजाओं की सभी सेना ऐसे फट जाती है जैसे सूर्य उदय होने से अन्धकार फट जाता है ॥४२॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो सप्पिसवाणं ।

मंत्र—ॐ नमो णमिऊण विषधर-विष-प्रणाशन-रोग-शोक दोष-ग्रह-कप्पदुमच्चजाई सुहनाम-गहण सकलसुहदे ॐ नमः स्वाहा ।

Like the darkness dispelled by the lustre of the rays of the rising sun, the army, accompanied by the loud roar of the prancing horses and elephants, even of powerful kings, is dispersed in the battle-field with the mere recitation of Thy name. 42.

युद्ध में रक्षक और विजय दायक

कुन्ताग्र-भिन्न-गज-शोणित-वारिवाह—
वेगावतार-तरणातुर-योध-भीमे ।
युद्धे जयं विजित-दुर्जय-जेय-पक्षास्—
त्वत्-पाद-पंकज-वना-श्रयिणो लभन्ते ॥४३॥

मारे जहाँ गयन्द, कुम्भ हथियार विदारे,
उमगे रुधिर प्रवाह वेग जलसम विस्तारे।
होंय तिरन असमर्थ महाजोधा बलपूरे,
तिस रन में जिन तोय भक्त जे हैं नर सूरे ॥
दुर्जन अरि कुल जीतकें, जय पावें निकलंक ।
तुम पद पंकज मन बसें, ते नर सदा निशंक ॥

अर्थ—हे विश्व-विजेता ! जिस युद्ध में भाले बर्छियों के द्वारा छिन्न भिन्न हाथियों के शरीर से निकले हुए रुधिर के प्रवाह को पार करने में बड़े बड़े शूरवीर योद्धा भी व्याकुल हो जाते हैं, ऐसे भयानक विकराल युद्ध में आपके चरणों की शरण लिये भक्त पुरुष दुर्जन शत्रु को भी जीत लेते हैं ॥४३॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो महुर-सवाणं ।

मंत्र—ॐ नमो चक्रेश्वरी देवी चक्रधारिणी जिनशासन-सेवा-कारिणी क्षुद्रोपद्रव-विनाशिनी धर्मशान्ति-कारिणी नमः शान्ति कुरु कुरु स्वाहा ।

Those, who resrot to Thy lotus-feet, get victory by defeating the invincibly victorious side (of the enemy) in the battle-field made terrible wilh warriors, engaged in crossing speedily the flowing currents of the river of the blood-water of the elephants pierced with the pointed spears, 43.

भयानक-जल-विपत्ति नाशक

अम्भो-निधौ क्षुभित-भीषण-नक्र-चक्र—
पाठीन-पीठ-भय-दोल्वण-वाडवाग्नौ ।
रंगत्तरंग-शिखर-स्थित-यान-पात्रास्—
त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद्-व्रजन्ति ॥४४॥

नक्र चक्र मगरादि मच्छ करि भय उपजावै ।
जामें वड़वा अग्नि दाहतें नीर जलावै ।
पार न पावैं जास, थाह नहिं लहिए जाकी,
गरजे अति गम्भीर लहर की गिनति न ताकी ॥
सुखसों तिरैं समुद्र को, जे तुम गुण सुमराँहि ।
लोल कलोलन के शिखर, पार यान ले जाँहि ॥

अर्थ—हे तरण तारण देव ! जहाँ भयानक नाकू मगर, बड़े मच्छ (ह्वेल शार्क आदि मछली) आदि जलचर जीवों ने क्षोभ मचा रक्खा है तथा वडवा अग्नि से जिसका जल बहुत गर्म हो गया है ऐसे भयानक समुद्र में विकराल तूफान के समय आपका स्मरण करने से मनुष्य अपने जलयान (जहाज) को उठती हुई तरंगों के ऊपर से बिना किसी कष्ट के ले जाते हैं ॥४४॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अमिय सवाणं ।

मंत्र—ॐ नमो रावणाय विभीषणाय कुम्भकरणाय लङ्काधिपतये महाबल पराक्रमाय मनश्चिन्तितं कुरु कुरु स्वाहा ।

Even on that ocean, which contains lhe dreadful submarine fire, the agitated and therefore, terrific alligators and fishes fearlessly move those, though their ships are placed on high dashing waves, who but remember Thee. 44.

सर्व भयानक रोग नाशक

उद्भूत-भीषण-जलोदर-भार-भुग्नाः,
शोच्यां दशा-मुपगताश्-च्युत-जीविताशाः ।
त्वत्पाद-पंकज-रजोमृतदिग्ध-देहाः,
मर्त्या भवन्ति मकर-ध्वज-तुल्य-रूपाः ॥४५॥

महा जलोदर रोग, भार पीड़ित नर जे हैं,
वात, पित्त, कफ, कुष्ट आदि जो रोग गहे हैं ।
सोचत रहैं उदास नाहिं जीवन की आशा,
अति घिनावनी देह धरैं दुर्गन्ध निवासा ।
तुम पद पंकज धूल को, जो लावै निज अंग ।
ते नीरोग शरीर लहि, छिनमें होंय अनंग ॥

अर्थ—हे अजरामर प्रभो ! जलोदर रोग के कारण जो व्यक्ति पेट के भार से खेद-भिन्न हैं, भयानक रोग के कारण जिनकी दशा शोचनीय है, जिनके जीवित रहने की आशा नहीं रही, ऐसे रोगीजन यदि आपके चरणों की धूल अपने शरीर से लगाते हैं तो वे नीरोग होकर कामदेव के समान सुन्दर हो जाते हैं ॥४५॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अक्खीण-महाण-साणं ।

मन्त्र—ॐ नमो भगवती क्षुद्रोपद्रव-शान्ति-कारिणी रोगकष्ट-ज्वरोपशमनं शान्ति कुरु कुरु स्वाहा ।

Even thase, who are drooping with the weight of terrible dropsy and have given up the hope of life and have reached a deplorable condition, become as beautiful as Cupid by besmearing their bodies with the nectar-like pollen dust of Thy lotus-feet. 45.

कारागार आदि बन्धन विनाशक

आपाद-कण्ठ-मुरुशृंखल-वेष्टितांगा,
गाढं बृहन्निगड-कोटि-निघृष्ट-जंघाः ।
त्वन्नाम-मन्त्र-मनिशं मनुजाः स्मरन्तः
सद्यः स्वयं विगत-बन्ध-भया भवन्ति ॥४६॥

पांव कंठतें जकर बांध सांकल अतिभारी,
गाढ़ी बेड़ी पैर मांहि जिन जांघ विदारी।
भूख, प्यास, चिन्ता शरीर दुख जे विललाने,
शरण नांहि जिन कोय भूप के बन्दीखाने ॥
तुम सुमरत स्वयमेव ही, बन्धन सब कट जांहि ।
छिनमें ते सम्पति लहैं, चिंता भय विनसांहि ॥

अर्थ—हे बन्ध-विमोचन ! बन्दीघर (जेल) में जिनको पैर से कंठ तक भारी जंजीर से जकड़ दिया है, बड़ी बेड़ी की कोर से जिन की जांघें छिल गई हैं, ऐसे मनुष्य आपके नाम को स्मरण करते हुए) तुरन्त स्वयं बन्धन और भय से छूट जाते हैं ॥४६॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो वड्ढमाणाणं ।

मन्त्र—ॐ नमो ह्रां ह्रीं श्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः ठः ठः जः जः क्षां क्षीं क्षूं क्षः क्षयः स्वाहा ।

By muttering day-and-night the sacred syllables of Thy name, even those, whose bodies are fettered from head to feet by heavy chains and whose shanks are lacerated by the tight gyves, instantaneously get rid of the fear of their bondage. 46·

सर्व भय निवारक

मत्त-द्विपेन्द्र-मृगराज-दवानलाहि-
संग्राम-वारिधि-महोदर-बंधनोत्थम् ।
तस्याशु नाश-मुपयाति भयं भियेव,
यस्तावकं स्तव-मिमं मतिमान-धीते ।।४७।।

महामत्त गजराज और मृगराज दवानल,
फणपति रण परचण्ड नीरनिधि रोग महाबल ।
बन्धन ये भय आठ डरपकर मानों नाशैं,
तुम सुमरत छिनमांहि अभय थानक परकाशैं ।।
इस अपार संसार में, शरन नांहि प्रभु कोय ।
तातैं तुम पद-भक्त को, भक्ति सहायी होय ।।

अर्थ—हे संकट निवारक प्रभो ! जो मनुष्य आपके इस स्तवन को पढ़ता है उसके, मदोन्मत्त हाथी, सिंह, दावानल (प्रचण्ड अग्नि), सर्प, युद्ध, समुद्र,जलोदर आदि रोग तथा बन्दीघर हथकड़ी बेड़ी आदि के बन्धन का भय स्वयं तत्काल डर कर नष्ट हो जाता है ।।४७।।

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो वड्ढमाणाणं ।

मन्त्र—ॐ नमो ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः य क्ष श्रीं ह्रीं फट् स्वाहा ।

The intelligent man, who chants this prayer offered to Thee is in no time liberated from the fear born of wild elephants, lion, forest-conflagration, snakes, battles oceans, dropay and shackles. 47.

मनोवांछित सिद्धिदायक

स्तोत्र-स्रजं तव जिनेंद्र गुणैर्-निबद्धां
भक्त्या मया विविध-वर्ण-विचित्र-पुष्पाम् ।
धत्ते जनो य इह कण्ठ-गतामजस्रं
तं मानतुंगमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥४८॥

यह गुणमाल विशाल नाथ तुम गुणन संवारी,
विविध वर्णमय पुहुप गूंथ मैं भक्ति विथारी ।
जो नर पहिरैं कण्ठ, भावना मनमें भावें,
मानतुङ्ग ते निजाधीन शिवलक्ष्मी पावें ॥
भाषा भक्तामर कियो, 'हेमराज' हित हेत ।
जे नर पढ़ें सुभावसों, ते पावें शिवखेत ॥

अर्थ—हे जिनेन्द्र ! विविध वर्णमय (अक्षरमय, रंगमय) आपके गुणों से गुँथी हुई जो मैंने भक्ति से यह स्तुति रूपी माला बनाई है, जो पुरुष इसको अपने गले में सतत धारण करता है, उस उच्च-ज्ञानी या सन्मानी व्यक्ति को मुक्ति लक्ष्मी शीघ्र प्राप्त होती है ।

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वसाहूणं ।

मन्त्र—ॐ ह्रीं अर्हं णमो भगवते महतिमहावीर वड्ढमाण बुद्धिरिसीणं ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा झ्रौं झ्रौं स्वाहा । ॐ नमो बंभचारिणे अट्ठारह सहस्र सीलांगरथधारिणे नमः स्वाहा ।

The Goddess of wealth of her own accord resorts to that man of high self-respect in this world, who always places round his neck, O Jinendra this garland of orisons, which has been strung by me with the strings of Thy excellences out of devotion, and which looks charming on account of the multi-coloured flowers in the shape of beautiful words. 48.

भक्तामर स्तोत्र भाषा

[श्री पं० गिरिधर शर्मा कृत]

हैं भक्त देव-नत-मौलि-मणिप्रभा के,
उद्योत-कारक, विनाशक पापके हैं।
आधार जो भव-पयोधि पड़े जनोंके,
अच्छी तरह नम उन्हीं प्रभुके पदों को ॥१॥

श्री आदिनाथ विभुकी स्तुति मैं करूंगा,
की देव-लोक-पति ने स्तुति है जिन्हों की।
अत्यन्त सुन्दर जगत्त्रय-चित्तहारी,
सुस्तोत्र से, सकल शास्त्र रहस्य पाके ॥२॥

हूं बुद्धिहीन, फिर भी बुध-पूज्यपाद !
तैयार हूं स्तवनको निर्लज्ज होके।
है और कौन जगमें तज बाल को जो,
लेना चहे सलिल-संस्थित चन्द्र-बिम्ब ? ॥३॥

होवे बृहस्पति-समान सुबुद्धि तो भी।
है कौन जो गिन सके तव सद्गुणों को ?
कल्पान्त-वायु-वश सिन्धु अलंघ्य जो है,
है कौन जो तिर सके उसको भुजासे ? ॥४॥

हूं शक्तिहीन फिर भी करने लगा हूं,
तेरी प्रभो, स्तुति, हुआ वश-भक्तिके मैं।
क्या मोह के वश हुआ शिशु को बचाने,
है सामना न करता मृग सिंह का भी ॥५॥

हूँ अल्पबुद्धि, बुध-मानव की हँसी का,
हूँ पात्र, भक्ति-तव है मुझको बुलाती।

जो बोलता मधुर कोकिल है मधू में,
है हेतु आम्र-कलिका बस एक उसका ॥६॥
तेरी किये स्तुति, विभो, बहु जन्म के भी,
होते विनाश सब पाप मनुष्य के हैं।
भौंरे समान अति श्यामल ज्यों अंधेरा,
होता विनाश रविके करसे निशाका ॥७॥
यों मान, की स्तुति शुरू मुझ अल्पधी ने,
तेरे प्रभाव-वश नाथ, वही हरेगी।
सल्लोक के हृदय को, जल-बिन्दु भी तो,
मोती समान नलिनी-दलपै सुहाते ॥८॥
दुर्दोष दूर तव हो स्तुतिका बनाना,
तेरी कथा तक हरे जगके अघों को।
हो दूर सूर्य, करती उसकी प्रभा ही,
अच्छे प्रफुल्लित सरोजन को सरों में ॥९॥
आश्चर्य क्या, भुवन-रत्न भले गुणों से,
तेरी किये स्तुति बने तुझ से मनुष्य।
क्या काम है जगत् में उन मालिकों का,
जो आत्म-तुल्य न करें निज-आश्रितों को ॥१०॥
अत्यन्त सुन्दर, विभो, तुझको विलोक,
अन्यत्र आँख लगती नहिं मानवों की।
क्षीराब्धि का मधुर सुन्दर वारि पीके,
पीना चहे जलधिका जल कौन खारा ?॥११॥
जो शान्ति के सुपरमाणु प्रभो, तनूमें,
तेरे लगे, जगत में उतने वही थे।
सौन्दर्य-सार जगदीश्वर, चित्तहर्ता,
तेरे समान इससे नहिं रूप कोई ॥१२॥

तेरा कहां मुख सुरादिक नेत्र-रम्य,
सर्वोपमान-विजयी, जगदीश, नाथ !
त्यों ही कलंकित कहां यह चन्द्रबिम्ब,
जो हो पड़े दिवस में द्युतिहीन फीका ॥१३॥

अत्यन्त सुन्दर कलानिधि की कला-से,
तेरे मनोज्ञ गुण, नाथ, फिरें जगों में ।
है आसरा त्रिजगदीश्वर का जिन्हों को,
रोके उन्हें त्रिजग में फिरते न कोई ॥१४॥

देवाङ्गना हर सकीं मन को न तेरे,
आश्चर्य नाथ, इसमें कुछ भी नहीं है !
कल्पान्त के पवन से उड़ते पहाड़,
पै मन्दराद्रि हिलता तक है कभी क्या ? ॥१५॥

बत्ती नहीं, नहिं धुआं, नहिं तैल-पूर,
भारी हवा तक नहीं सकती बुझा है ।
सारे त्रिलोक बिच है करता उजेला,
उत्कृष्ट दीपक विभो, द्युतिकारि तू है ॥१६॥

तू हो न अस्त, तुझको गहता न राहु,
पाते प्रकाश तुझ से जग एक साथ ।
तेरा प्रभाव रुकता नहिं बादलों से,
तू सूर्य से अधिक है महिमा-निधान ॥१७॥

मोहान्धकार हरता, रहता उगा ही,
जाता न राहु-मुख में, न छुपे घनों से ।
अच्छे प्रकाशित करे जग को, सुहावे,
अत्यन्त कान्तिधर, नाथ मुखेन्दु तेरा ॥१८॥

क्या भानु से दिवस में, निशि में शशी से,
तेरे, प्रभो, सुमुख से तम नाश होते ?
अच्छी तरह पक गया जग-बीच धान,
है काम क्या ज़ल-भरे इन बादलों से ।।१९।।

जो ज्ञान निर्मल, विभो, तुझ में सुहाता,
भाता नहीं वह कभी पर-देवता में ।
होती मनोहर छटा मणि-मध्य जो है,
सो काच में नहिं, पड़े रवि-बिम्ब के भी ।।२०।।

देखे भले, अयि विभो, पर-देवता ही,
देखे जिन्हें हृदय आ तुझमें रमे ये ।
तेरे विलोकन किये फल क्या प्रभो, जो
कोई रमे न मन में पर-जन्म में भी ।।२१।।

माएं अनेक जनतीं जग में सुतों को,
हैं किन्तु वे न तुझ-से सुतकी प्रसूता ।
सारी दिशा धर रहीं रवि का उजेला,
पै एक पूरव-दिशा रवि को उगाती ।।२२।।

योगी तुझे, परम-पूरुष हैं बताते,
आदित्य-वर्ण मलहीन तमिस्र-हारी ।
पाके तुझे जय करें सब मौत को भी,
है और ईश्वर नहीं वर मोक्ष-मार्ग ।।२३।।

योगीश अव्यय, अचिन्त्य, अनङ्गकेतु,
ब्रह्मा, असंख्य परमेश्वर, एक, नाना ।
ज्ञान-स्वरूप, विभु, निर्मल, योगवेत्ता,
त्यों आद्य, सन्त तुझको कहते अनन्त ।।२४।।

तू बुद्ध है विबुध-पूजित-बुद्धिवाला,
कल्याण-कर्तृ वर शंकर भी तुही है।
तू मोक्ष-मार्ग-विधि-कारक है विधाता,
है व्यक्त नाथ, पुरुषोत्तम भी तुही है ॥२५॥

त्रैलोक्य-आर्ति-हर नाथ, तुझे नमूँ मैं,
हे भूमि के विमल रत्न, तुझे नमूं मैं।
हे ईश सर्व जग के, तुझको नमूं मैं,
मेरे भवोदधि-विनाशि, तुझे नमूं मैं ॥२६॥

आश्चर्य क्या गुण सभी तुझमें समाये,
अन्यत्र क्योंकि न मिली उनको जगा ही।
देखा न नाथ, मुख भी तव स्वप्न में भी,
पा आसरा जगत का सब दोष ने तो ॥२७॥

नीचे अशोक तरुके तन है सुहाता,
तेरा विभो, विमल रूप प्रकाश-कर्ता।
फैली हुई किरणका, तमका विनाशी,
मानो समीप घनके रविबिम्ब ही है ॥२८॥

सिंहासन-स्फटिक रत्न-जड़ा उसी में,
भाता, विभो, कनक-कान्त शरीर तेरा।
ज्यों रत्न-पूर्ण उदयाचल शीश पै जा,
फैला स्वकीय किरणें रवि-बिम्ब सोहे ॥२९॥

तेरा सुवर्ण-सम देह, विभो, सुहाता,
है, श्वेत कुन्द-सम चामर के उड़े से।
सोहे सुमेरुगिरि, कांचन कान्तिधारी,
ज्यों चन्द्रकांति, धर निर्झरके बहेसे ॥३०॥

मोती मनोहर लगे जिनमें, सुहाते,
नीके हिमांशु-सम सूरज-ताप-हारी।
हैं तीन छत्र शिरपै अति रम्य तेरे,
जो तीन लोक परमेश्वरता बताते ॥३१॥

गम्भीर नाद भरता दश ही दिशा में,
सत्संगकी त्रिजगको महिमा बताता।
धर्मेशकी कर रहा जय-घोषणा है,
आकाश बीच बजता यशका नगारा ॥३२॥

गन्धोद-बिन्दु-युत मारुत की गिराई,
मन्दारकादि तरुकी कुंसुमावली की।
होती मनोरम महा सुरलोक से है,
वर्षा मनो तव लसे वचनावली है ॥३३॥

त्रैलोक्यकी सब प्रभामय वस्तु जीती,
भामण्डल प्रबल है तव, नाथ, ऐसा।
नाना प्रचण्ड रवि-तुल्य सुदीप्ति-धारी,
है जीतता शशि सुशोभित रातको भी ॥३४॥

है स्वर्ग-मोक्ष-पथ-दर्शनका सुनेता,
सद्धर्मके कथनमें पटु है जगोंके।
दिव्यध्वनि प्रकट अर्थमयी, प्रभो है,
तेरी, लहें सकल मानव बोध जिससे ॥३५॥

फूले हुए कनकके नव पद्मके-से,
शोभायमान नखकी किरण-प्रभा से।
तूने जहाँ पग धरे अपने, विभो, हैं,
नीके वहाँ विबुध पङ्कज कल्पते हैं ॥३६॥

तेरी विभूति इस भाँति, विभो, हुई जो,
सो धर्म के कथन में न हुई किसी की।
होते प्रकाशित, परन्तु तमिस्र-हर्ता,
होता न तेज रवि-तुल्य कहीं ग्रहों का ॥३७॥

दोनों कपोल झरते मद से सने हैं,
गुञ्जार खूब करती मधुपावली है।
ऐसा प्रमत्त गज होकर क्रुद्ध आवे,
पावें न किन्तु भय, आश्रित लोक तेरे ॥३८॥

नाना करीन्द्र-दल-कुम्भ विदारके, की,
पृथ्वी सुरम्य जिसने गज-मोतियों से।
ऐसा मृगेन्द्र तक चोट करे न उसपे,
तेरे पदाद्रि जिसका शुभ आसरा है ॥३९॥

झालें उठें चहुं उड़ें जलते अंगारे,
दावाग्नि जो प्रलय-वह्नि समान भासे।
संसार भस्म करने-हित पास आवे,
त्वत्कीर्ति-गान शुभ-वारि उसे शमावे ॥४०॥

रक्ताक्ष क्रुद्ध पिक-कंठ समान काला,
फुंकार सर्प फणको कर उच्च धावे।
निःशंक हो जन उसे पग से उलांघे.
त्वन्नाम नाग-दमनी जिसके हिये हो ॥४१॥

घोड़े जहां हिनहिने, गरजे गजाली,
ऐसे महाप्रबल सैन्य धराधिपों के।
जाते सभी बिखर हैं तव नाम गाये,
ज्यों अन्धकार, उगते रवि के करों से ॥४२॥

बर्छे लगे बह रहे गज-रक्त के हैं,
तालाब से, विकल हैं तरणार्थ योद्धा।
जीते न जायँ रिपु, संगर बीच ऐसे,
तेरे प्रभो, चरण-सेवक जीतते हैं ॥४३॥

हैं काल-नृत्य करते मकरादि जन्तु,
त्यों बाड़वाग्नि अति भीषण सिन्धु में है।
तूफान में पड़ गये जिनके जहाज,
वे भी प्रभो स्मरण से तव, पार होते ॥४४॥

अत्यन्त पीड़ित जलोदर-भार से हैं,
है दुर्दशा, तज चुके निज-जीविताशा।
वे भी लगा तव पदाब्ज-रजः सुधाको,
होते, प्रभो, मदन-तुल्य सुरूप-देही ॥४५॥

सारा शरीर जकड़ा दृढ़ सांकलों से,
बेड़ी पड़ें, छिल गईं जिनकी सुजाँघें।
त्वन्नाम-मन्त्र जपते-जपते उन्हों के,
जल्दी स्वयं झर पड़े सब बन्ध-बेड़ी ॥४५॥

जो बुद्धिमान् इस सुस्तव को पढ़ें हैं,
होके विभीत उनसे भय भाग जाता।
दावाग्नि-सिन्धु-अहिका, रण-रोगका, त्यों,
पंचास्य, मत्त गजका, सब बन्धनोंका ॥४७॥

तेरे मनोज्ञ गुण से स्तव-मालिका ये,
गूँथी, प्रभो, विविधवर्ण सुपुष्पवाली।
मैंने सभक्ति, जनकंठ धरे इसे जो,
सो 'मानतुङ्ग' सम प्राप्त करे सुलक्ष्मी ॥४८॥

भक्तामर स्तोत्र

[श्री पं० नाथूराम डोंगरीय]

भक्त-सुरों के नत-मुकुटों की, मणियों को की कांति प्रदान।
युगारम्भ में किया जिन्होंने, निविड़ पाप-तम का अवसान ।।
भली भाँति उन प्रभु चरणों में, नमस्कार कर बारम्बार।
भव सागर में मग्न जनों का, किया जिन्होंने अभ्युत्थान ।। १ ।।

द्वादशांग के दिव्य ज्ञान से विमल बुद्धि पाकर अभिराम।
की सुरेन्द्र ने जिसकी अनुपम, जग-जन-मोहन भक्ति ललाम ।।
उस आदीश्वर प्रथम तीर्थंकर, शर्म शिवंकर की मैं भी।
अभिवादन कर अहा ! भक्तिवश, यह स्तुति करता अविराम ।।२।।

ज्यों जल में प्रतिबिम्ब चन्द्र का, देख चाव से शिशु बुधिहीन।
सहसा लालायित हो जाता, किन्तु चाहता कौन प्रवीण ?
त्यों देवेन्द्र-पूज्य-पद विभुवर ! कहां अचिन्त्य गुणाकर आप।
और कहाँ मैं स्तुति करने की करूं धृष्टता इह ! मतिहीन ।।३।।

गुण-समुद्र ! तव विपुल प्रभामय चन्द्र-तुल्य गुणरत्न अनंत।
सुरगुरु सम भी कौन विज्ञ है, वर्णन कर जो पावे अन्त ?
भला प्रलय के प्रबल पवन से, क्षोभित, मगर मच्छ परिपूर्ण-।
अगम सिन्धु केवल भुजबल से, तर सकता है कौन महन्त ।।४।।

हूं मैं शक्ति-विहीन मुनीश्वर ! तौ भी भक्ति-भरा यह मन।
देव ! कर रहा विवश तुम्हारा, करने स्तवन जगन्मोहन !
तुम्हीं कहो जब मृग-शावक पर, सिंह आक्रमण करता है।
शिशु-विमुग्ध तब शक्तिहीन मृग, क्या न प्रभो ! करता है रण ।।५।।

स्वल्प - शास्त्र का ज्ञाता हूं मैं, विज्ञ करेंगे मम परिहास।
तदपि भक्ति वाचाल कर रहो, मन में भर भर कर उल्लास ।।

पंचम स्वर से मञ्जुल लय में, मोहित हो मञ्जरियों पर ।
ज्यों कोयलियां कूका करतीं, आ जाने पर प्रिय मधुमास ॥६॥

भक्तिभाव से तव गुण-गरिमा, जो जन मन में गाते हैं ।
भगवन् ! उनके चिर-संचित अघ, क्षण में ही क्षय जाते हैं ॥
जैसे छाये हुए निशा में, अलि-सम नील तिमिर घनघोर ।
प्रातः रवि की उग्र किरण से, पल में लय हो जाते हैं ॥७॥

मान यही मैं मन्दमति करूँ, तव स्तवन प्रारम्भ निदान ।
सुजनवृन्द प्रमुदित होंगे ही, तव प्रभाव से अय भगवान् ॥
रम्य कमलिनी दल पर पड़ कर, यथा सलिल के बिन्दु प्रभो !
मुक्ताफल सम झिलमिल अनुपम, द्युति पाते सुन्दर अम्लान ॥८॥

महामहिम ! तव वर गुणस्तवन, का करना तो दूर रहा ।
करती है तव पुण्य कथा ही, जगती के अघ चूर अहा !
ज्यों दिनकर की प्रभा मात्र से, कमल मुदित हो जाते हैं ।
अन्तरिक्ष में यदपि सरों से, रहता है वह दूर महा ॥ ९ ॥

त्रिभुवन-तिलक ! तव स्तुति कर जो मानव पुण्य कमाते हैं ।
क्या अचरज, यदि समयान्तर में, वे तुम सम बन जाते हैं ?
उन स्वार्थांध स्वामियों से क्या, जो समृद्ध हैं सभी प्रकार,
किन्तु कभी निज आश्रित जनको, निज सम नहीं बनाते हैं ॥१०॥

इकटक दर्शनीय सुन्दर छबि, देख तुम्हारी अय भगवन् !
पाते रंच न तोष कहीं फिर, भव्य जनों के युगल नयन ॥
चन्द्र किरण सम, शुचि सुमधुरतम, क्षीरसिंधु का कर जलपान ।
पीना चाहेगा जगती पर—खारा पानी कौन सुजान ॥११॥

मूर्तिमान सौन्दर्य ! तुम्हारे, इस सुन्दर तनु का निर्माण ।
जिन २ दिव्य रुचिर अणुओं के, द्वारा हुआ वृषभ भगवान !

उतने ही परमाणु कदाचित्, निखिल विश्व में थे रमणीय।
इसीलिये तुम-सम मन-मोहन, रूप नहीं दिखता श्रीमान् ।।१२।।

सुर-नर - मोहन ललित वदन तव, देख भला क्या जाय कहा ?
सचमुच प्रभु ! इस जगतीतल पर, इक उपमान न शेष रहा ।।
चन्द्रबिम्ब की उपमा दें तो वह भी नहीं कलंक-विहीन।
दिन में पीत-पलास-पत्र सम, दिखता जो द्युतिहीन महान ।।१३।।

चन्द्रकिरण सम तव उज्ज्वल गुण, व्याप रहे हैं त्रिभुवन में।
विश्वेश्वर ! इससे न तनिक भी, अचरज होता है मन में ।।
क्योंकि जिन्होंने लिया सहारा, जगन्मान्य जगदीश्वर का।
भला उन्हें फिर रोक सकेगा, कौन स्वच्छन्द विचरने में ।।१४।।

सुर-बालाएँ तुम्हें दिखाकर, हावभाव, मय यदि लावण्य ।
कर न सकीं तव विमल चित्त में, रंचक विकृति काममल-जन्य ।।
इसमें भी अचरज क्या ? जैसे, प्रलय-पवन से क्षुद्र अचल।
उड़ जाते हैं, किन्तु कभी क्या—हिलता मंदराद्रिका शृङ्ग ।।१५।।

जिसमें रंच न तैल न बत्ती, और धूम का लेश रहा।
निखिल विश्व जिसकी आभा में, जगमग जगमग दमक रहा ।।
गिरि के शिखर उड़ाने वाला, वायु बुझा सकता न जिसे।
जग में यों अनुपम दीपक है, तू ही जगदाधार ! अहा ।।१६।।

तीन भुवन को प्रगटाता है, युगपत जिसका ज्ञान प्रखर।
अस्त न होता कभी, न जिसको, ग्रस पाता राहू पल भर ।।
कभी सघन घन रोक न पाते, जिसका विमल प्रताप महान्।
ज्योतिपुञ्ज ! यों रवि से बढ़कर, है तू दिव्य प्रभा का घर ।।१७।।

मोह महातम का क्षय-कारक, अमित प्रभाधारक अभिराम।
रहता नित्य उदित, जिसकी छवि, रंच न ढक सकते घनश्याम ।।

नीच राहु से भी अगम्य है, जो प्रकाश का उज्ज्वल स्रोत ।
विश्व-प्रकाशक वदन कमल तव, है अपूर्व ही चन्द्र ललाम ॥१८॥

जबकि देश में वन्य शालि के, खेत पक चुके हों चहुँ ओर ।
तब होता है व्यर्थ गगन में, घन का घोर मचाना शोर ॥
त्यों ही दिन में दिनकर, निशिमें शशिका भी क्या काम ? अहा ।
तव मुखेन्दु जब नष्ट कर चुका, जगका मोह महातम घोर ॥१९॥

विश्व-तत्व-ज्ञायक ! तुम में ज्यों, दिपता सम्यग्ज्ञान अनन्त—
उसकी आभा का शतांश भी, पा न सके सब सन्त महन्त ॥
सच है—सूर्यकांत मणि में ज्यों, काँति मनोरम दिपती है—
पा सकता क्या काचखंड त्यों, होकर रवि-करसे द्युतिमन्त ॥२०॥

रूप देखना हरि हरादि के, मैं उत्तम समझा भगवान् !
क्योंकि उन्हे लख मन में तुम पर, हो जाता है तोष महान् ॥
किन्तु प्रभो ! तव दर्शन से क्या, विविध देवताभासों को—
इस भव क्या, परभवमें भी नहि, चित हरना रहता आसान ॥२१॥

यदपि अवनितल पर महिलाएँ, शत शत बालक जनतीं हैं ।
किन्तु आप सम अनुपम हीरक, जननि न सब जन सकतीं हैं ॥
यथा निशा में सर्व दिशायें, धारण करतीं तारक दल ।
पर प्रभात में विमल प्रभाकर, प्राची दिश ही जनती है ॥२२॥

तमहर, सूर्यसमप्रभ, निर्मल, पुरुषोत्तम इत्यादि अनन्त ।
नामों से आराधन करते, भगवन् ! तव सब सन्त महन्त ॥
बिना तुम्हारे मुक्तिमार्ग भी अन्य नहीं सुखकर जगदीश !
योगि जिसे पा मृत्युञ्जय बन, हो जाते हैं शिव-तिय-कन्त ॥२३॥

अक्षय, अमल, असंख्य, योगविद्, आद्यब्रह्म कोई कह कर ।
कोई घट-घट-व्यापक, या फिर, कोई ईश्वर, योगीश्वर ॥

एक अनेक, अनन्त ज्ञान-मय, या अचिन्त्य महिमा का धाम।
कामजितादि नाम ले गाते, सन्त पुरुष तव यश सुखकर ॥२४॥

विबुध-वंद्य है ज्ञान तुम्हारा, अतः तुम्हीं हो 'बुद्ध' जिनेश !
त्रिभुवन में सुख के संबर्द्धक, हो तुम ही 'शंकर' करुणेश ! !

मुक्तिमार्ग के आद्य-प्रवर्त्तक, होने से 'ब्रह्मा' हो तुम।
'पुरुषोत्तम' तुम सम जगती पर, और कौन होगा विश्वेश ॥२५॥

त्रिभुवन के संताप-निवारक, सुख-संचारक ! तुम्हें प्रणाम।
जगतीतल के निर्मल भूषण, निर्गत-दूषण ! तुम्हें प्रणाम !

भक्तिभाव से अभिवंदन है, जगदीश्वर ! तव बारम्बार।
भव सर-शोषक ! स्वीकृत हो, मम पद-पंकज में पुनः प्रणाम ॥२६॥

गुण सम्पूर्ण सिमट त्रिभुवन के, तुम में व्याप गये चित चोर !
तो अचरज क्या, मिला न आश्रय, जब उनको जगमें चहुं ओर ॥

दोषों को तो गर्व बहुत था, विविध देवताभासों का।
अतः न वे प्रति स्वप्नों में भी, देख सके प्रभु ! तेरी ओर ॥२७॥

अन्तरिक्ष में बिछ जाता है, श्याम घटाओं का जब जाल।
उसके तट दिपता है भासुर, तमहर ज्यों रवि-बिम्ब विशाल ॥

उच्च अशोक वृक्ष के तट में, त्यों तव दिव्य रूप भगवान् !
कितना प्रिय लगता है ! जिसको, लोचन होते देख निहाल ॥२८॥

पूर्व दिशा में यथा प्रभाकर, निज किरणों का तान वितान—
होता उदित उदयगिरि पर कर, निविड़ निशा-तमका अवसान ॥

रत्नजटित सिंहासन पर त्यों, तव सुवर्ण सा दिव्य शरीर—
करवाता है भव्य जनों को, वर सौन्दर्य-सुधा का पान ॥२९॥

चन्द्र-किरण सम उज्ज्वल झर झर, बहती है जिनमें जलधार।
ऐसे रम्य निर्झरों से ज्यों, मेरु स्वर्ण तट लसैं अपार ॥

त्यों ही महामहिम ! कुन्दन-सम, दीप्त तुम्हारा वपु अम्लान ।
कुन्द कुसुम सम चँवर ढुरें तब, बिखराता सौन्दर्य उदार ॥३०॥

चन्द्रकला-सम रम्य प्रभामय, अगणित मुक्ता-जटित ललाम ।
तीन छत्र नित शोभित रहते, तव मस्तक ऊपर अभिराम ॥
ऊपर तनकर रोक सूर्य का, प्रखर प्रताप तुम्हें योगीन्द्र !
त्रिभुवन का परमेश्वर मानों, वे प्रगटा देते गुणधाम ॥३१॥

नभ-मण्डल में दुन्दुभि सुमधुर, स्वर भर भर कर अति गम्भीर ।
जगती पर सद्धर्म-राज्य की, जय घोषित कर देते धीर ॥
देते वही विश्व को तेरे, मधुर मिलन का शुभ सवाद ।
बंदीजन बनकर गाते हैं, वही विमल यश तव-वरवीर ॥३२॥

पारिजात, मंदार आदि सुरद्रुम, के सुरभित रम्य सुमन ।
सुर चुनकर सुगन्धि-मय जलसंग बरसाते, हो प्रेम मगन ॥
मंद समीर संग जब नभ से, होती उनकी वृष्टि ललाम ।
तब यों लगता मानों भू पर—बिखर रहे तव दिव्य वयन ॥३३॥

त्रिभुवन का सौन्दर्य सिमट यदि, मूर्तिमान बनकर आवे ।
तो वह भी तव भामण्डल की, द्युति लखकर शर्मा जावे ॥
कोटि-सूर्य-द्युति फीका करता, प्रभु ! तव मुख फिर भी है सौम्य ।
कर अवसान निशा-तमका जो, शान्ति सुधा नित बरसावे ॥३४॥

भारतिभूषण ! दिव्य-ध्वनि तव, होती है अत्यन्त उदार ।
प्राणिमात्र के खुल जाते हैं, जिससे स्वर्ग मुक्ति के द्वार ॥
धर्म-तत्व का विशद विवेचन, अद्भुत ढंग से करती वह ।
सुर नर मुनि पशु-वृन्द सभी सुन, जिस पर कर लेते अधिकार ॥३५॥

झिलमिल होती जिनमें नखद्युति, यथा गगन में चन्द्र किरण ।
खिले हुए नव पद्म-पुञ्ज-प्रभु, गौरवर्ण तव विमल चरण ॥

पड़ते जहां, वहीं रचते हैं, सुरगण स्वर्ग कमल अविराम।
जिनकी सुषमा लख होता है, जगती-तलका प्रमुदित मन ॥३६॥

मूर्तिमती ऐसी विभूतियां, धर्म-देशना समकालीन—
मिली तुम्हें, वैसी न स्वप्न में, प्राप्त कर सके देव मलीन ॥
सच है, निविड निशातम-नाशक, मार्त्तण्ड-सम प्रभा प्रचण्ड–
कर सकता है प्राप्त कहाँ से, झिलमिलात तारक-दल दीन ।३७।
जिसके लोल कपोल मलिन हों, बहने से झर झर मदधार।
मत्त मधुप-दल ने भन भन कर, जिसे किया हो क्रुद्ध अपार ॥
यों उद्धत गर्जनकर आता—लख ऐरावत सम गजराज।
भव्य न होते भीत, जिन्होंने—लिया तुम्हारा शरण उदार ।३८।
छिन्न भिन्न कर मत्त गजों के, जिसने उन्नत गण्डस्थल।
रक्तसने मोती बिखराकर, चकित किया हो जगतीतल ॥
ऐसा भीषण भीम केसरी, भी न वार कर सकता है।
उस जनपर, जिसने श्रद्धासे, पकड़ लिया प्रभु ! तव अंचल ।३९।
धधकाता हो जिसे प्रलय-सम, प्रबल वायु का वेग गहन।
ज्वलित अग्नि कण उडें, कि जिनसे, छा जावे सम्पूर्ण गगन ॥
यों दावानल लगे कहीं यदि, कर दे जो कि चराचर भस्म।
किन्तु उसे भी तव यशगायन, कर देता है शीघ्र शमन ॥४०॥
क्रुद्ध, रक्तदृग, महाभयंकर, काला कोकिल कंठ समान।
ऊंचा फण कर फणि आता जब, वीरों के कँपते हैं प्राण ॥
किन्तु प्रभो ! जिसके मन में तव, नाम रूप अहि-दमनी है।
हो निर्द्वंद्व चला जाता वह, फणि पर पद रख सिंह समान ॥४१॥
एक ओर गज गर्ज रहे हों, हींस रहे हों हय चहुँ ओर।
डटी हुई हो वीर नरेशों, की सेना रव करती घोर ॥
किन्तु दूसरी ओर अकेला, शक्तिहीन जन जप तव नाम—
उन सबको क्षणमें क्षय करता, ज्यों रवि घोर निशातम भोर ।४२।

युद्धस्थल में विद्ध गजों से, बहती जहाँ रक्त की धार—
जिसमें लथपथ होकर योद्धा, करते रहते युद्ध अपार ।।
महा-भयंकर शत्रु-पक्ष को, देख सुभट घबराते हैं ।
पर तव आश्रित शानदार जय—रूप वहाँ पाते उपहार ।।४३।।

तव गुण-चिन्तन से अय भगवन् ! नक्र चक्र से क्षुब्ध महान ।
वड़वानल से पूर्ण, जहाँ पर, उठते हों भीषण तूफान ।।
ऐसे अगम समुद्र मध्य भी, बीच भँवर में पड़ी हुई—
नौका निर्भयता से तट पर, ले जाना होता आसान ।।४४।।

घोर जलोदर आदि रोग से, जिनकी दशा हुई दयनीय ।
भीषण दुख पा तजी जिन्होंने, जीवन की आशा रमणीय ।।
ऐसे रुग्ण दुखी जन भी प्रभु, तव पद-रज-संजीवन से ।
हो जाते हैं अहा ! मदन-सम, स्वस्थ और अतिशय कमनीय ।४५।

सिर से पग तक जकड़ा जिनका, लोह शृङ्खलाओं से तन ।
दृढ़ बेड़ी से छिले जिन्हों के, दोनों घुटने और जघन ।।
ऐसे बन्दी भी श्रद्धा से, जप तप नाम मंत्र भगवन् !
हो जाते हैं धन्य ! स्वयं वे, निमिष मात्र में गत-बन्धन ।।४६।।

भगवन् ! तव निर्मल गुणस्तवन, करते रहते जो मतिमान ।
उनसे स्वामिन् ! डर भी डरकर, हो जाते हैं अन्तर्द्धान ।।
सिंह समर, रुज, शोक, सिन्धु, फणि, गज, दावानल, कारागार ।
इन सबके भीषण दुःखों का हो जाता क्षण में अवसान ।।४७।।

हे जिनेन्द्र ! तब गुण-नन्दन की, क्यारी से चुनकर अभिराम—
विविध वर्ण कुसुमों की गूँथी, भक्तिमाल यह दिव्य ललाम ।।
"मानतुङ्ग" जो जन श्रद्धा से, इनसे कण्ठ सजाते हैं ।
मुक्तिरमा 'अवनीन्द्र" श्रीसह, विवश उन्हें वरती अविराम ।४८।

———

श्री भक्तामर भाषा पाठ

(श्री कमलकुमारजी शास्त्री 'कुमुद')

भक्त अमर नत मुकुट सुमणियों, की सु-प्रभा का जो भासक ।
पापरूप अतिसघन तिमिर का, ज्ञान-दिवाकर-सा नाशक ।।
भव-जल पतित जनों को जिसने, दिया आदि में अवलम्बन ।
उनके चरण कमल का करते, सम्यक बारम्बार नमन ।।१।।

सकल वाङ्मय तत्त्वबोध से, उद्भव पटुतर धी-धारी ।
उसी इन्द्र की स्तुति से है, वन्दित जग-जन मन-हारी ।।
अति आश्चर्य की स्तुति करता, उसी प्रथम जिनस्वामी की ।
जगनामी-सुखधामी तद्भव-शिवगामी अभिरामी की ।।२।।

स्तुति को तैयार हुआ हूँ, मैं निर्बुद्धि छोड़ के लाज ।
विज्ञजनों से अर्चित हे प्रभु, मंदबुद्धि की रखना लाज ।।
जल में पड़े चन्द्र-मंडल को, बालक बिना कौन मतिमान ।
सहसा उसे पकड़ने वाली, प्रबलेच्छा करता गतिमान ।।३।।

हे जिन ! चन्द्रकान्त से बढ़कर, तव गुण विपुल अमल अतिश्वेत ।
कह न सकें नर हे गुण-सागर, सुर-गुरु के सम बुद्धिसमेत ।।
मक्र-नक्र-चक्रादि जन्तु युत, प्रलय पवन से बढ़ा अपार ।
कौन भुजाओं से समुद्र के, हो सकता है परले पार ।।४।।

वह मैं हूँ कुछ शक्ति न रखकर, भक्ति प्रेरणा से लाचार ।
करता हूँ स्तुति प्रभु तेरी, जिसे न पौर्वा-पर्य विचार ।।
निज शिशु की रक्षार्थ आत्म-बल, विना विचारे क्या न मृगी ।
जाती है मृगपति के आगे, शिशु-सनेह में हुई रँगी ।।५।।

अल्पश्रुत हूँ श्रुतवानों से, हास्य कराने का ही धाम ।
करती है बाचाल मुझे प्रभु, भक्ति आपकी आठों याम ।।

करती मधुर गान पिक मधु में, जगजन मनहर अति अभिराम ।
उसमें हेतु सरस फल फूलों, के युत हरे-भरे तरु-आम ।।६।।
जिनवर को स्तुति करने से, चिर संचित भविजन के पाप ।
पल भर में भग जाते निश्चित, इधर-उधर अपने ही आप ।।
सकल लोक में व्याप्त रात्रि का, भ्रमर सरीखा काला ध्वान्त ।
प्रातः रवि की उग्र किरण लख, हो जाता क्षण में प्राणान्त ।।७।।
मैं मति-हीन-दीन प्रभु तेरी, शुरू करूं स्तुति अघ-हान ।
प्रभु-प्रभाव ही चित्त रहेगा, सन्तों का निश्चय से मान ।।
जैसे कमल-पत्र पर जल-कण, मोती कैसे आभावान ।
दिपते हैं फिर छिपते हैं असली मोती में हे भगवान ।।८।।
दूर रहे स्तोत्र आपका, जो कि सर्वथा है निर्दोष ।
पुण्य-कथा ही किन्तु आपकी, हर लेती है कल्मष-कोष ।।
प्रभा प्रफुल्लित करती रहती, सर के कमलों को भरपूर ।
फेंका करता सूर्य-किरण को, आप रहा करता है दूर ।।९।।
त्रिभुवन-तिलक जगत-पति हे प्रभु ! सद्गुरुओं के हे गुरुवर्य्य ।
सद्भक्तों को निजसम करते, इसमें नहीं अधिक आश्चर्य ।।
स्वाश्रित जन को निजसम करते, धनी लोग धन धरनी से ।
नहीं करें तो उन्हें लाभ क्या ? उन धनिकों की करनी से ।।१०।।
हे अनिमेष विलोकनीय प्रभु, तुम्हें देखकर परम-पवित्र ।
तोषित होते कभी नहीं हैं, नयन मानवों के अन्यत्र ।।
चन्द्र-किरण सम उज्ज्वल निर्मल, क्षीरोदधि का कर जलपान ।
कालोदधि का खारा पानी, पीना चाहे कौन पुमान ।।११।।
जिन जितने जैसे अणुओं से, निर्मापित प्रभु तेरी देह ।
थे उतने वैसे अणु जग में, शांत-राग-मय निःसन्देह ।।
हे त्रिभुवन के शिरोभाग के, अद्वितीय आभूषण-रूप ।
इसीलिए तो आप सरीखा, नहीं दूसरों का है रूप ।।१२।।

कहां आप का मुख अतिसुन्दर, सुर-नर-उरग नेत्र-हारी ।
जिसनें जीत लिये सब जग के, जितने थे उपमाधारी ।।
कहां कलंकी बंक चन्द्रमा, रंक-समान कीट-सा दीन ।
जो पलाश-सा फीका पड़ता, दिन में हो करके छबि-छीन ।।१३।।

तव गुण पूर्ण-शशांक कान्तिमय, कला-कलापों से बढ़के ।
तीन लोक में व्याप रहे हैं, जो कि स्वच्छता में चढ़के ।।
विचरें चाहे जहां कि जिनको, जगन्नाथ का एकाधार ।
कौन माई का जाया रखता, उन्हें रोकने का अधिकार ।।१४।।

मद की छकीं अमर ललनाएँ, प्रभु के मन में तनिक विकार ।
कर न सकीं आश्चर्य कौन सा, रह जाती हैं मन को मार ।।
गिर गिर जाते प्रलय पवन से, तो फिर क्या वह मेरु—शिखर ।
हिल सकता है रंच—मात्र भी, पाकर झंझावात प्रखर ।।१५।।

धूप न बत्ती तैल बिना ही, प्रकट दिखाते तीनो लोक ।
गिरि के शिखर उड़ाने वाली, बुझा न सकती मारुत झोक ।।
तिस पर सदा प्रकाशित रहते, गिनते नहीं कभी दिन-रात ।
ऐसे अनुपम आप दीप हैं, स्व-पर-प्रकाशक जग विख्यात ।।१६।।

अस्त न होता कभी न जिसको, ग्रस पाता है राहु प्रबल ।
एक साथ बतलाने वाला, तीन लोक का ज्ञान विमल ।।
रुकता कभी प्रभाव न जिसका, बादल की आकर के ओट ।
ऐसी गौरव—गरिमा वाले, आप अपूर्व दिवाकर कोट ।।१७।।

मोह महातम दलने वाला, सदा उदित रहने वाला ।
राहु न बादल से दबता पर, सदा स्वच्छ रहने वाला ।।
विश्व-प्रकाशक मुख-सरोज तव, अधिक कांतिमय शांतिस्वरूप ।
है अपूर्व जगका शशि-मण्डल, जगत शिरोमणि शिव का भूप ।।१८।।

नाथ आपका मुख जब करता, अन्धकार का सत्यानाश।
तब दिन में रवि और रात्रि में, चन्द्र-बिम्ब का विफल प्रयास ॥
धान्य–खेत जब धरती तल के, पके हुये हों अति अभिराम।
शोर मचाते जल को लादे, हुये घनों से तब क्या काम ॥१९॥

जैसा शोभित होता प्रभु का, स्वपर-प्रकाशक उत्तम ज्ञान।
हरिहरादि देवों में वैसा, कभी नहीं हो सकता भान ॥
अति ज्योतिर्मय महारतन का, जो महत्व देखा जाता।
क्या वह किरणाकुलित कांच में, अरे कभी लेखा जाता ॥२०॥

हरिहरादि देवों का ही मैं, मानूं उत्तम अवलोकन।
क्योंकि उन्हें देखने भर से, तुझसे तोषित होता मन ॥
है परन्तु क्या तुम्हें देखने, से हे स्वामिन्! मुझको लाभ।
जन्म जन्म में भी न लुभा, पाते कोई यह मम, अमिताभ ॥२१॥

सौ सौ नारी सौ सौ सुत को, जनती रहती सौ सौ ठौर।
तुम से सुत को जनने वाली, जननी महती क्या है और?
तारागण को सर्व दिशाएँ, धरें नहीं कोई खाली।
पूर्व दिशा ही पूर्ण प्रतापी, दिनपति को जनने वाली ॥२२॥

तुम को परम पुरुष मुनि मानें, विमल वर्ण रवि तमहारी।
तुम्हें प्राप्त कर मृत्युञ्जय के, बन जाते जन अधिकारी ॥
तुम्हें छोड़कर अन्य न कोई, शिवपुर—पथ बतलाता है।
किन्तु विपर्यय मार्ग बता कर, भव—भव में भटकाता है ॥२३॥

तुम्हें आद्य अक्षय अनन्त प्रभु, एकानेक तथा योगीश।
ब्रह्मा ईश्वर या जगदीश्वर, विदितयोग मुनिनाथ मुनीश ॥
विमल ज्ञानमय या मकरध्वज, जगन्नाथ जगपति जगदीश।
इत्यादिक नामों कर माने, सन्त निरन्तर विभो निधीश ॥२४॥

ज्ञान पूज्य है, अमर आपका, इसीलिए कहलाते बुद्ध।
भुवनत्रय के सुख—संवर्द्धक, अतः तुम्हीं शंकर हो शुद्ध॥
मोक्ष—मार्ग के आद्य प्रवर्त्तक, अतः विधाता कहे गणेश।
तुम सम अवनी पर पुरुषोत्तम, और कौन होगा अखिलेश॥२५॥

तीन लोक के दुःखहरण करने वाले हे तुम्हें नमन।
भूमण्डल के निर्मल—भूषण, आदि जिनेश्वर तुम्हें नमन॥
हे त्रिभुवन के अखिलेश्वर हो, तुमको बारम्बार नमन।
भव—सागर के शोषक पोषक, भव्य जनों के तुम्हें नमन॥२६॥

गुणसमूह एकत्रित होकर, तुझमें यदि पा चुके प्रवेश।
क्या आश्चर्य न मिल पाये हों, अन्य आश्रय उन्हें जिनेश॥
देव कहे जाने वालों से, आश्रित होकर गर्वित दोष।
तेरी ओर न झांक सके वे, स्वप्नमात्र में हे गुणकोष॥२७॥

उन्नत तरु अशोक के आश्रित, निर्मल किरणोन्नत वाला।
रूप आपका दिपता सुन्दर, तमहर मनहर छवि वाला॥
वितरण किरण निकर तमहारक, दिनकर घनके अधिक समीप।
नीलाचल पर्वत पर होकर, नीराजन करता ले दीप॥२८॥

मणि-मुक्ता किरणों से चित्रित, अद्भुत शोभित सिंहासन।
कान्तिमान् कंचन-सा दिखता, जिस पर तव कमनीय वदन॥
उदयाचल के तुंग शिखर से, मानो सहस्ररश्मि वाला।
क़िरण-जाल फैलाकर निकला, हो करने को उजियाला॥२९॥

ढुरते सुन्दर चँवर विमल अति, नवल-कुन्द के पुष्प-समान।
शोभा पाती देह आपकी, रौप्य धवल-सी आभावान॥
कनकाचल के तुंग शृंग से, झर झर झरता है निर्झर।
चन्द्र-प्रभा सम उछल रही हो, मानो उसके ही तट पर॥३०॥

चन्द्र-प्रभा सम झल्लरियों से, मणि-मुक्तामय अति कमनीय।
दीप्तिमान् शोभित होते हैं, सिर पर छत्रत्रय भवदीय ।।
ऊपर रहकर सूर्य-रश्मि का, रोक रहे हैं प्रखर-प्रताप ।
मानों वे घोषित करते हैं, त्रिभुवन के परमेश्वर आप ।।३१।।

ऊँचे स्वर से करने वाली, सर्व दिशाओं में गुञ्जन ।
करने वाली तीन लोक के, जन-जन का शुभ-सम्मेलन ।।
पीट रही है डंका-"हो सत् धर्म"-राज की ही जय-जय ।
इस प्रकार बज रही गगन में, भेरी तव यश की अक्षय ।।३२।।

कल्पवृक्ष के कुसुम मनोहर, पारिजात एवं मंदार ।
गन्धोदक की मन्द वृष्टि करते हैं प्रमुदित देव उदार ।।
तथा साथ ही नभ से बहती, धीमी धीमी मन्द पवन ।
पंक्ति बांध कर बिखर रहे हों, मानों तेरे दिव्य-वचन ।।३३।।

तीन लोक की सुन्दरता यदि, मूर्तिमती बन कर आवे ।
तव भा-मंडल की छवि लखकर, तव सन्मुख शरमा जावे ।।
कोटि सूर्य के ही प्रताप सम, किन्तु नहीं कुछ भी आताप ।
जिसके द्वारा चन्द्र सुशीतल, होता निष्प्रभ अपने आप ।।३४।।

मोक्ष-स्वर्ग के मार्ग प्रदर्शक, प्रभुवर तेरे दिव्य-वचन ।
करा रहे हैं 'सत्य-धर्म' के, अमर-तत्त्व का दिग्दर्शन ।।
सुनकर जग के जीव वस्तुतः, कर लेते अपना उद्धार ।
इस प्रकार परिवर्तित होते, निज-निज भाषा के अनुसार ।।३५।।

जगमगात नख जिसमें शोभें, जैसे नभमें चन्द्रकिरण ।
विकसित नूतन सरसीरुह सम, हे प्रभु तेरे विमल चरण ।।
रखते जहां वहीं रचते हैं, स्वर्णकमल, सुरदिव्य ललाम ।
अभिनन्दन के योग्य चरण तव, भक्ति रहे उनमें अभिराम ।।३६।।

धर्म-देशना के विधान में, था जिनवर का जो ऐश्वर्य ।
वैसी क्या कुछ अन्य कुदेवों, में भी दिखता है सौंदर्य ॥
जो छवि घोर-तिमिर के नाशक, रवि में है देखी जाती ।
वैसा ही क्या अतुल कान्ति, नक्षत्रों में लेखी जाती ॥३७॥

लोल कपोलों से झरती है, जहां निरन्तर मद की धार ।
होकर अति मदमत्त कि जिस पर, करते हैं भौंरे गुंजार ॥
क्रोधासक्त हुआ यों हाथी, उद्धत ऐरावत सा काल ।
देख भक्त छुटकारा पाते, पाकर तव आश्रय तत्काल ॥३८॥

क्षत-विक्षत कर दिये गजों के, जिसने उन्नत गण्डस्थल ।
कांतिमान् गज-मुक्ताओं से, पाट दिया हो अवनी-तल ॥
जिन भक्तों को तेरे चरणों, के गिरि की हो उन्नत ओट ।
ऐसा सिंह छलाँगें भरकर, क्या उस पर कर सकता चोट ? ॥३९॥

प्रलय काल की पवन उठाकर, जिसे बढ़ा देती सब ओर ।
फिकें फुलिंगे ऊपर तिरछे, अंगारों का भी होवे जोर ॥
भुवनत्रय को निगला चाहे, आती हुई अग्नि भभकार ।
प्रभु के नाम-मन्त्र जल से वह, बुझ जाती है उसही बार ॥४०॥

कंठ कोकिला सा अति काला, क्रोधित हो फण किया विशाल ।
लाल-लाल लोचन करके यदि, झपटै नाग महा विकराल ॥
नाम-रूप तब अहि-दमनी का, लिया जिन्होंने हो आश्रय ।
पग रख कर निश्शंक नाग पर, गमन करें वे नर निर्भय ॥४१॥

जहां अश्व की और गजों की, चीत्कार सुन पड़ती घोर ।
शूरवीर नृप की सेनाएँ, रव करती हों चारों ओर ॥
वहां अकेला शक्तिहीन नर, जप कर सुन्दर तेरा नाम ।
सूर्य—तिमिर सम शूर—सैन्य का, कर देता है काम तमाम ॥४२॥

रण में भालों से वेधित गज, तन से बहता रक्त अपार।
वीर लड़ाकू जहँ आतुर हैं, रुधिर-नदी करने को पार॥
भक्त तुम्हारा हो निराश तहँ, लख अरिसेना दुर्जयरूप।
तव पादारविन्द पा आश्रय, जय पाता उपहार-स्वरूप ॥४३॥

वह समुद्र कि जिसमें होवें, मच्छ मगर एवं घडियाल।
तूफां लेकर उठती होवें, भयकारी लहरें उत्ताल ॥
भ्रमर-चक्र में फंसे हुये हों, बीचों बीच अगर जल-यान।
छुटकारा पा जाते दुख से, करने वाले तेरा ध्यान ॥४४॥

असहनीय उत्पन्न हुआ हो, विकट जलोदर पीड़ा भार।
जीने की आशा छोड़ी हो, देख दशा दयनीय अपार॥
ऐसे व्याकुल मानव पाकर, तेरी पद-रज संजीवन।
स्वास्थ्य-लाभकर बनता उसका, कामदेव सा सुन्दर तन ॥४५॥

लोह-शृंखला से जकड़ी है, नख से सिख तक देह समस्त।
घुटने-जंघे छिले बेड़ियों, से अधीर जो हैं अतित्रस्त॥
भगवन ऐसे बन्दीजन भी, तेरे नाम-मन्त्र की जाप।
जप कर गत-बन्धन हो जाते, क्षण भर में अपने ही आप ॥४६॥

वृषभेश्वर के गुण स्तवन का, करते अहि-निशि जो चिंतन।
भय भी भयाकुलित हो उनसे, भग जाता है हे स्वामिन॥
कुंजर-समर-सिंह-शोक-रुज, अहि दावानल कारागार।
इनके अतिभीषण दुःखों का, हो जाता क्षण में संहार ॥४७॥

हे प्रभु तेरे गुणोद्यान की, क्यारी से चुन दिव्य-ललाम।
गूंथी विविध वर्ण सुमनों की, गुण-माला सुन्दर अभिराम॥
श्रद्धासहित भविकजन जो भी, कण्ठाभरण बनाते हैं।
मानतुंग-सम निश्चित सुन्दर, मोक्ष-लक्ष्मी पाते हैं ॥४८॥

भक्तामर स्तोत्र हिन्दी

(श्री रतनलाल जी जैन)

भक्तसुरों के झुके सिरों की मणियों के जो प्रतिभासक,
अति प्रगाढ़ पापान्धकार के जग में विश्रुत जो नाशक;
भव-पयोधि में पड़े जनों के एक मात्र जो हैं आधार,
सबसे पहले कर उन प्रभु की पाद-बन्दना भली प्रकार ।।१।।

सकल वाङ्मय-तत्त्वज्ञान से जिनकी प्रतिभा अति निष्णात,
उन इन्द्रादिक देवों तक ने किया स्तवन जिनका अवदात,
अति सुन्दर त्रिजगन्मनोहर स्तोत्रों से नित ही सविशेष
उन आदिनाथ विभु की स्तुति मैं करता हूं हो मुग्ध विशेष ।।२।।

देवों द्वारा चरण तुम्हारे वन्दनीय हैं, हे अभिराम !
मैं मति हीन महा निलज्ज हो करने चला स्तवन अभिराम,
चन्द्र-बिम्ब को देख सलिल में, लेना चाहे बोलो कौन ?
बालक को तज और जगत में, करे पकड़नें का हठ कौन ? ।।३।।

होकर सुर-गुरु तुल्य बुद्धि में कौन गुणों को सके बखान,
हे गुण सागर ! तेरे सद्गुण शशि समान है शुभ्र महान्;
प्रलय-काल की चण्ड हवा जब सागर को देती झकझोर,
है ऐसा जन कौन, भुजा से जो सकता हो उसको पौर ? ।।४।।

यद्यपि मैं अति शक्ति-हीन हूँ भक्ति-भाव-वश फिर भी आज,
स्तवन तुम्हारा करने को मैं हुआ समुद्यत, हे जिनराज !
अपने शिशु की रक्षा के हित आत्म-शक्ति का कर न विचार
मृगपति-सम्मुख धावित होता क्या न कहो मृग प्रेम प्रसार? ।।५।।

अल्प-बुद्धि हूँ, बुध-मानव का हँसी पात्र मैं हूं जिनराज !
भक्ति तुम्हारी मुखरित मुझको पर करती है सहसा आज;

ऋतु बसंत में कोयल गाती मधुर-मधुर जो गीत अनेक
उसका कारण आम्र-मंजरी जग में है बस केवल एक ॥६॥

तेरी संस्तुति के प्रभाव से जन्म-जंन्म के अघ सम्पूर्ण,
मनुज मात्र के क्षण ही भर में, वैसे ही हो जाते चूर्ण;
चञ्चरीक-सा अतिशय श्यामल जगव्यापी निशिका तमजाल,
सविता की स्वर्णिम किरणों से ज्यों प्रणष्ट होता तत्काल ॥७॥

यही समझ कर अल्प बुद्धि भी रचता हूँ मैं स्तवन महान्
जो सज्जन के मन को हरता तव प्रभाव से, हे द्युतिमान् !
पानी की लघु-लघु बूंदें ज्यों कमल-दलों पर पड़, मतिमान !
अच्छी लगतीं, मन को हरतीं, मुक्ताफल-सी होकर भान ॥८॥

हे प्रभु, तेरे अमल स्तवन की महिमा का क्या करूँ बखान,
तेरी पावन पुण्य कथा तक हरती जग के पातक म्लान;
दूर भानु के रहते ही ज्यों फैल चतुर्दिक उसका घाम,
जलजों को कर विकसित सरमें तम का करता काम तमाम ॥९॥

हे भूतेश्वर ! हे जगभूषण ! इसमें क्या अचरज की वात,
स्तवन तुम्हारा करके यदि नर तुझसा ही होवे प्रतिभात;
है कैसा वह मालिक जग में जो प्रतिदिन कर विभव प्रदान,
अपने आश्रित लोगों कोभी कर न सके यदि आत्म-समान ॥१०॥

निर्निमेष नयनों से तुझको लेता है जो मनुज निहार,
उसकी आँखें और कहीं भी होती तुष्ट न भली प्रकार;
विधु से सुन्दर दुग्ध-सिन्धु का पीकर निर्मल मीठा नीर,
कौन अज्ञ चाहेगा पीना जल निधि का अति खारा नीर ? ॥११॥
जिनके द्वारा हुआ विनिर्मित तेरा सुन्दर निर्मल गात,
राग-रहित परमाणु पुञ्ज वे उतने ही थे जग में प्राप्त;
अपर रूप इस वसुधा भर में, हे प्रभु, तुझसा अति अभिराम,
इसीलिए तो नहीं दीखता, हे भुवनों के रत्न ललाम ॥१२॥

तीन जगत की उपमाओं को जिसने जीत लिया सर्वत्र,
कहां तुम्हारा यह मुख-मंडल हरता जो देवों के वक्त्र ?
और कहाँ वह विधु का मण्डल सह कलंक औ दीन मलीन,
जो पलाश-सम हो जाता है दिन में, हे प्रभु कान्ति-विहीन ॥१३॥

तीनों जग में व्याप रहे हैं, हे प्रभु ! तेरे गुण कमनीय,
पूर्ण चन्द्र की कला-तुल्य जो हैं अति निर्मल अति रमणीय;
तीनों जग के अधिपतियों के अधिपति का है जिनको प्राप्त,
आश्रय उनको रोक सकेगा कहो कौन होने से व्याप्त ? ॥१४॥

कर न सकीं यदि सुर-ललनाएँ विकृत तेरे मन को, ईश !
तो इसमें आश्चर्य्य-कौन-सा है, बोलो, हे त्रिजगदीश ?
प्रलयकाल के प्रबल पवन से हिल जाते हैं शैल महान्,
पर क्या कभी चलित होता है, बोलो, मन्दर अचल महान ? ॥१५॥

धूम न जिसमें, स्नेह न जिसमें और वर्त्तिका से जो हीन,
चण्ड हवा के झोकों में भी जो रहता है कम्प-विहीन;
हे प्रभु, तुम तो ऐसे ही हो अतुलित अनुपम दीप महान;
जो करता सम्पूर्ण त्रिजग को एक साथ ही प्रभा प्रदान ॥१६॥

राहू तुझको कभी न गहता, कभी न तू होता है अस्त,
सदा प्रकाशित होते तुझसे एक साथ ही लोक समस्त;
नहीं घनों से रुक सकता है, हे प्रभु तेरा तेज महान,
हे मुनीन्द्र, तू दिनकर से भी बढ़कर है अति महिम-निधान ॥१७॥

सतत उदित रहता है, हरता मोह-तिमिर जो निविड़ महान,
राहु ग्रसित जो कभी न होता, और न कर सकते घन म्लान;
हे प्रभु, तेरा मुख-सरोज यह है अपूर्व शशि-बिम्ब-समान,
कान्तिमान अति, जो करता है सारे जग को प्रभा प्रदान ॥१८॥

तेरा ही यह मुख-मण्डल जब करता तम का काम तमाम,
दिन में रवि से, निशि में शशि से, कहो कौन सा फिर है काम ?
खेतों का सब धान जगत में पक जाता जब भली प्रकार,
वारि-भार से झुके मेघ-दल होते हैं तब सिद्ध असार ॥१६॥

तुझमें जैसा सुन्दर लगता, हे जिनेश, शुचि निर्मल ज्ञान,
हरिहर आदिक देवों में वह कभी न होता वैसा भान;
महारत्न में जैसी मिलती निरुपम निर्मल छटा विशेष,
नहीं काच में मिलती वैसी पड़ने पर रवि-रश्मि अशेष ॥२०॥

हरि-हर आदिक, उन देवों का दर्शन भी है श्रेष्ठ महान्,
जिन्हें देखकर तुझमें ही इस मन को मिलती शान्ति महान्;
यदि जन्मान्तर में न सके हर अन्य देवता मन को, ईश !
तुझे देखने का ही फल तब क्या हो सकता ? हे जगदीश ॥२१॥

कोटि-कोटि माताएँ जग में जनती हैं नित पुत्र अनेक,
पर तुझ जैसे अनुपम सुत की अन्य न दिखती जननी एक;
सभी दिशाएँ तारक-दल से शोभित होती हैं बहु भाँति,
है पर प्राची एक दिशा ही जो जनती है दिनकर-कान्ति ॥२२॥

मुनिजन सारे तुझे मानते तिमिर-विनाशक दोष-विहीन !
रवि-सम परम तेज के धारी, परम पुरुष, हे राग-विहीन !
मृत्युञ्जय भी हो सकते नर पाकर तुझको भली प्रकार,
तुझे छोड़कर मोक्ष-मार्ग का नहीं श्रेष्ठ है कोई द्वार ॥२३॥

सभी सन्त बतलाते तुझको—"आद्य, अगोचर, सीमा-हीन,
मदन-केतु, योगीश, योग के ज्ञाता, ईश्वर, दोष-विहीन;
सर्वज्ञानमय, सर्ववस्तुगत, ब्रह्मा और असंख्य, अनेक,
अविनाशी भी आदिहीन भी, और तुझे ही शाश्वत, एक" ॥२४॥

देवों द्वारा अर्च्य बुद्धि के धारी होने से तुम बुद्ध,
तीनों जग के मंगल-कर्त्ता, अतः तुम्हीं हो शङ्कर शुद्ध,
मोक्ष-पंथ की विधि के कारक, अतः विधाता हो जिनदेव !
और नरोत्तम भी तो तुम ही, स्पष्ट रूप से हो स्वयमेव ॥२५॥

तीनों जग के दुःख के हर्ता, तुझे झुकाता मैं निज सीस,
हे भूतल के सुन्दर भूषण, तुझे झुकाता मैं निज सीस,
तीन लोक के परम अधीश्वर, तुझे झुकाता मैं निज सीस,
जगत-सिन्धु के शोषक हे प्रभु! तुझे झुकाता मैं निज सीस ॥२६॥

इसमें है आश्चर्य्य कौन-सा, सारे ही गुण तुझ में, देव !
नहीं दूसरा आश्रय पाकर समा गये हों यदि स्वयमेव ?
तरह तरह का आश्रय पाकर जातगर्व दोषों ने, देव !
आकर तुझको सपने में भी नहीं कभी देखा, मुनिदेव ! ॥२७॥

होता है एकान्त सुशोभित सतत तुम्हारा, हे प्रभु धीर !
तरु अशोक के नीचे संश्रित कान्तिमान मल-हीन शरीर,
जैसे रवि का बिम्ब सुशोभित घन-समीप होता सविशेष,
करतीं जिसकी रश्मि-राशियाँ अंधकार का नाश, जिनेश! ॥२८॥

तुंग उदयगिरिके मस्तक पर छितराकर निज किरण-वितान,
जैसे शोभित होता है वह दिवानाथ का बिम्ब महान्,
वैसे ही लगता है निर्मल कनक-प्रभा-सा तेरा गात,
मणि-मयूख-आभासे उज्ज्वल सिंहासन पर अति अवदात ॥२९॥

जिस पर शोभित कुन्द-पुष्प-से चंचल उज्ज्वल चामर कान्त,
हेम-प्रभा-सम तेरा वह तन शोभित होता है एकान्त,
विधु-सी निर्मल, कनक-प्रभा-सी अतिशय सुन्दर हे जगदीश !
पड़ती है निर्झर जल-धारा सुर-गिरि-तट पर मानों, ईश ! ॥३०॥

ढक लेते जो भानु-प्रभा को लगते दिनकर-से द्युतिमान,
जटित मोतियों के समूह से द्युति जिनकी संवृद्ध महान,
तीन जगत पर परमेश्वरता तेरी जो बतलाते, देव !
माथे पर के तीन छत्र वे लगते हैं अति रम्य सदैव ॥३१॥

जिसके अति गम्भीर नाद से सभी दिशाएँ हैं परिपूर्ण,
तीन जगत के लोगों को शिव-संग-विभव बतलाता पूर्ण,
करता जो सद्धर्म विजय के जय-निनाद का घोष महान्,
हे प्रभु, वही नगाड़ा नभ में तेरे यश का करता गान ॥३२॥

गन्धयुक्त जीवन के लघु कण जिसमें मिश्रित हैं अन्यून,
पारिजात, मन्दार, नमेरू, सन्तानक के रम्य प्रसून,
मन्द हवा के साथ बरसते ऐसे होते हैं प्रतिभात,
मानों तेरे 'दिव्य वचन' की माला ही झरती अवदात ॥३३॥

तीनों जग के द्युतिमानों की द्युति को करती है जो म्लान,
दीप्तिमान तव भामण्डल की अतिशय उज्ज्वल दीप्ति महान,
होकर द्युति में एक साथ ही उदित अनेकों सम-आदित्य,
शशि से शोभित रम्य रात पर पाती है जय फिर भी नित्य ।३४।

स्वर्ग-मुक्ति-पथ दिखलाने में जो अतिशय ही है निष्णात,
सद्धर्म-तत्व के बतलाने में तीनों जग में जो विख्यात,
विशद अर्थमय सब भाषाओं में परिणत होने का, देव !
विद्यमान है स्वाभाविक गुण दिव्य-ध्वनि में तव जिनदेव ! ३५॥

विकसित स्वर्णिम सरसिज की सी द्युति जिनकी है अमल विशेष,
छिटक रही है जिनके नख की चारों ओर छटा सविशेष,
ऐसे सुन्दर पद-पद्मों को जहाँ-जहाँ रखते, जिनदेव !
वहाँ वहाँ रचते जाते है निर्मल नीरज नत हो देव ॥३६॥

धर्म कथन में जैसी महिमा हुई तुम्हारी, हे जिनराज !
नहीं अन्य की वैसी महिमा हुई कभी भी, हे जिनराज !
निबिड़ तिमिर को हरनेवाला जैसा हैं दिनकर का तेज,
वैसा सारे ग्रह-पुञ्जों का कभी नहीं हो सकता तेज ।।३७।।

मद से सने कपोलों पर निज सुन अलिकुल की गुन-गुन तान,
वृद्धिगत होता जाता है जिसका प्रतिक्षण कोप महान,
ऐसे उद्धत ऐरावत को सम्मुख आते देख, जिनेश !
तेरे आश्रित लोग न पाते कभी जरा भी भय का लेश ।।३८।।

जिसने नाना मत्त हाथियों के कुम्भों को सतत विदार,
रक्त-सने गज मुक्ताओं से किया धरा का नव श्रृंगार,
वह मृगपति भी नहीं आक्रमण उस नर पर करता, जिनदेव !
तव युग चरणाचल पर आश्रित जो रहता है मनुज सदैव ।।३९।।

जो है प्रलय-पवन से प्रेरित अति प्रचण्डतम अनल-समान,
अतिशय उज्ज्वल शोले जिससे फैल रहे सर्वत्र महान,
हे जिनेश ! जो सम्मुख आता द्रुतगति से करने विश्वान्त,
नामोच्चारण-जल से तेरे वह दावानल होता शान्त ।।४०।।

रक्त नयन हैं, पिकी-कण्ठ सा जिसका अतिशय श्यामल काय,
और क्रोध से होकर उद्धत फैला फण जो सम्मुख आय,
उस भुजंग को लांघे वह नर होकर भय से मुक्त सदैव,
नागदमन तव नाम हृदय में जिसके रहता है जिनदेव ! ।।४१।।

बल - सम्पन्न-नराधिप - सेना जिसमें नाग तुरंग अपार,
उछल उछल कर करते रहते घन निनाद-सा नाद अपार,
तेरे नामोच्चारण से प्रभु ! जाती रण में वह यों हार,
जैसे रवि-किरणों से होता नष्ट रात्रि का तिमिर अपार ।।४२।।

जिस रण में कुन्ताग्र-भिन्न-गज की बहती है शोणित-धार,
अति आतुर योद्धा हैं जिससे तिर तिर कर जाने को पार,
उनके द्वारा दुर्जय अरि उस भीम युद्ध में जाता हार,
तेरे पद पंकज-वन का जो लेते आश्रय भली प्रकार ॥४३॥

जिस सागर में लगी हुई है अतिशय भीषण बाडव आग।
मकर, पीठ, पाठीन आदि से और क्षुब्ध जो है बड़भाग !
लेकर तेरा नाम अभय हो जाते उस सागर से पार,
वे नर जिनके यान यद्यपि पड़े हुए हैं अति मंझधार ॥४४॥

महाजलोदर - रोग - भार से हुई दशा जिनकी दयनीय,
जीने की सब आशाओं को छोड़ चुके जो, हे रमणीय !
लगा देह में अपनी तेरे पद पद्मों का सुभग पराग,
सुन्दरता में हो जाते हैं, कामदेव-सम वे बड़भाग ॥४५॥

बड़ी बड़ी दृढ़ जंजीरों से बंधा हुआ है जिनका गात,
और गयीं छिल जाँघें जिनकी बड़ी बेड़ियों के पा घात,
बन्धन भय से मुक्त शीघ्र ही हो जाते हैं वे स्वयमेव,
नाम तुम्हारा जपते हैं जो शुद्ध हृदय से मनुज सदैव ॥४६॥

समद नाग, संग्राम, केसरी, फणधर, बन्धन, दाव, नदीश,
और जलोदर आदिक के भय सारे ही वे, हे जगदीश !
हो जाते हैं दूर शीघ्र ही उस मनुष्य के अपने आप,
तेरे इस अति रम्य स्तवन का करता है जो निशदिन जाप ॥४७॥

भक्ति - भाव - वश गूँथी मैंने तेरे गुणसमूह से आज,
रुचिर वर्णमय विविध पुष्पयुत स्तवन-मालिका यह जिनराज !
इस माला को करे कण्ठगत भक्ति-युक्त जो नर समुदाय,
'मानतुंग' वह अक्षय लक्ष्मी निश्चय ही पावे सुखदाय ॥४८॥

———

भक्तामर स्तोत्र के मन्त्र

(साधनविधि और फल)

भक्तामर स्तोत्र के ४८ श्लोकों के जो ४८ मन्त्र हैं उनकी साधन विधि तथा फल क्रमशः नीचे लिखे अनुसार हैं:—

१—प्रतिदिन ऋद्धि और मन्त्र १०८ बार जपने से तथा यन्त्र पास रखने से सब तरह के उपद्रव दूर होते हैं।

२—काले वस्त्र पहन कर, काले आसन पर दंडासन से बैठ कर, काली माला से पूर्व दिशा की ओर मुख करके प्रतिदिन १०८ बार ऋद्धि, मंत्र २१ दिन तक अथवा सात दिन तक प्रतिदिन १००० जपना चाहिये इससे शत्रु तथा शिर पीड़ा नष्ट होती है। यन्त्र पास रखने से नजर बन्द होती है। उन दिनों में एक बार भोजन करना चाहिये तथा प्रतिदिन नमक से होम करना चाहिए।

३—कमलगट्टा की माला से ऋद्धि और मन्त्र ७ दिन तक प्रतिदिन १०८ बार जपना चाहिये। होम के लिये दशांगधूप हो और गुलाब के फूल चढ़ाये जावें। चुल्लू में जल मंत्रित करके २१ दिन तक मुख पर छींटे देने से सब प्रसन्न होते हैं। यन्त्र पास में रखने से शत्रु की नजर बन्द हो जाती है।

४—सफेद माला द्वारा ७ दिन तक प्रतिदिन १००० बार ऋद्धि और मन्त्र जपना चाहिये, सफेद फूल चढ़ाने चाहियें। पृथ्वी पर सोना तथा एकाशन करना चाहिए। यदि कोई मछली पकड़ रहा हो तो २१ कंकड़ियां लेकर प्रत्येक कंकड़ी ७ बार मंत्र पढ़ कर जल में डाली जावे तो एक भी मछली जाल या कांटे में न आवेगी।

५—पीला वस्त्र पहन कर सात दिन तक १००० ऋद्धि, मन्त्र प्रतिदिन जपना, पीले फूल चढ़ाना तथा कुन्दरू की धूप जलाना चाहिये। जिसके नेत्र दुखते हों, उसे दिन भर भूखा रख कर शाम के समय २१ बार मंत्र से मंत्रित करके बतासे जल में घोल कर पिलाये जावें या नेत्रों पर छींटे दिये जावें तो नेत्र को आराम हो जाता है। मंत्रित जल कुँए में छिड़कने से लाल कीड़े कुंए में नहीं होने पाते। यन्त्र अपने पास रखना चाहिये।

६—२१ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार ऋद्धि व मंत्र जपने और यन्त्र अपने पास रखने से विद्या प्राप्त होती है। बिछुड़ा हुआ व्यक्ति आ मिलता है। मन्त्र व ऋद्धि का जाप लाल वस्त्र पहन कर करना चाहिए, पृथ्वी पर सोना तथा एक बार भोजन करना चाहिये, लाल फूल चढ़ाने चाहियें तथा कुन्दरू की धूप खेनी चाहिए।

७—प्रतिदिन हरी माला से १०८ बार ऋद्धि-मन्त्र २१ दिन जपना चाहिये। ऐसा करने से तथा यन्त्र को गले में बांधने से सांप का विष उतर जाता है और भी किसी तरह का विष प्रभाव नहीं करता। यदि १०८ बार ऋद्धि मन्त्र से कंकड़ी मंत्रित करके सर्प के शिर पर मारी जावे तो सर्प कीलित हो जाता है। लोबान की धूप खेनी चाहिये। यन्त्र हरा होना चाहिये।

८—अरीठे के बीजों की माला के द्वारा २१ दिन तक १००० जाप करने से तथा यन्त्र को अपने पास रखने से सब प्रकार का अरिष्ट दूर होता है। यदि नमक के ७ छोटे टुकड़ों को १०८-१०८ बार मन्त्र पढ़कर मंत्रित करके पीड़ायुक्त किसी अंग को झाड़ा जावे तो पीड़ा दूर हो जाती है। घी और गुग्गुल की धूप खेनी चाहिये तथा नमक की डली से होम करना चाहिये।

९—एक सौ आठ बार ऋद्धि-मन्त्र द्वारा चार कंकड़ियों को मंत्रित करके यदि उनको चारों दिशाओं में फेंका जावे तो चोर डाकू आदि का किसी तरह का भय नहीं रहता।

१०—पीली माला से प्रतिदिन १०८ बार ऋद्धि-मन्त्र का ७ या १० दिन जाप करने से तथा यन्त्र पास में रखने से कुत्ते के काटने का विष उतर जाता है। नमक की ७ डलियों को, प्रत्येक को १०८ बार मन्त्र द्वारा मंत्रित करके खिलाया जाय तो कुत्ते का विष असर नहीं करता। धूप कुन्दरू की होनी चाहिये।

११—लाल माला से २१ दिन तक (प्रतिदिन १०८ बार) बैठ कर या खड़े रह कर सफेद माला से १०८ बार जपने पर (दीप, धूप नैवेद्य फल लिये हुए) एवं यन्त्र अपने पास रखने से जिसे अपने पास बुलाना हो वह आ जाता है। धूप कुन्दरू की हो।

१२—लाल माला से मन्त्र और ऋद्धि का जाप ४२ दिन तक प्रतिदिन १००० करना चाहिये। दशांग धूप खेनी चाहिये। यन्त्र अपने पास रखने तथा मंत्र द्वारा १०८ बार तेल मंत्रित करके हाथी को पिलाने पर हाथी का मद उतर जाता है।

१३—पीली माला के द्वारा ७ दिन प्रतिदिन १००० ऋद्धि-मन्त्र का जाप करना चाहिये, एक बार भोजन तथा पृथ्वी पर शयन करना चाहिये। यन्त्र पास रखने से तथा ७ कंकड़ी लेकर प्रत्येक को १०८ बार मन्त्र से मंत्रित करके चारों दिशाओं में फेंकने से चोरों का भय नहीं रहता, मार्ग में और भी कोई भय नहीं आने पाता।

१४—सात कंकड़ी लेकर प्रत्येक को २१ बार ऋद्धि-मन्त्र द्वारा मंत्रित करके चारों ओर फेंकने से तथा यन्त्र अपने पास रखने से व्याधि, शत्रु आदि का भय नष्ट हो जाता है, लक्ष्मी प्राप्त होती है तथा वात रोग नष्ट होता है।

१५—ऋद्धि मंत्र द्वारा २१ बार तेल मंत्रित करके उस तेल को मुख पर लगाने से राजदरबार में प्रभाव बढ़ता है, सौभाग्य और लक्ष्मी की प्राप्ति होती है [१४ दिन तक लाल माला से १००० जाप करना चाहिए। दशांग धूप खेनी चाहिए। एक बार भोजन करना चाहिए।

१६—हरी माला से प्रतिदिन १००० ऋद्धि-मन्त्र का जाप ६ दिन तक करे, कुन्दरू की धूप खेवे। यन्त्र पास रखने से तथा मन्त्र का १०८ बार जाप करने से राजदरबार में प्रतिपक्षी की हार होती है शत्रु का भय नहीं रहता।

१७—सफेद माला से प्रतिदिन १००० ऋद्धि-मन्त्र को जाप ७ दिन तक करे, चन्दन की धूप खेवे। यन्त्र पास रखने से तथा शुद्ध अछूता जल २१ बार मंत्र कर पिलाने से पेट की असाध्य पीड़ा, वायुशूल, वायुगोला आदि मिट जाते हैं।

१८—लाल माला द्वारा प्रतिदिन ऋद्धि-मन्त्र का १००० जाप ७ दिन तक करना चाहिए, दशांग धूप खेनी चाहिये, एक बार भोजन करना चाहिये। यन्त्र को पास में रखने से तथा १०८ बार मंत्र जाप करने से शत्रु की सेना का स्तम्भन होता है।

१९—यन्त्र अपने पास रखने से तथा ऋद्धि-मन्त्र का १०८ बार जाप करने से अपने ऊपर दूसरे के द्वारा प्रयोग किया गया मंत्र प्रयोग, जादू, मूठ, टोटका आदि का प्रभाव नहीं होने पाता, न उच्चाटन का भय रहता है।

२०—यन्त्र को अपने पास रखने से तथा मन्त्र को १०८ बार जपने से सन्तान प्राप्त होती है, लक्ष्मी का लाभ होता है, सौभाग्य बढ़ता है, विजय मिलती है, बुद्धि बढ़ती है।

२१—यन्त्र अपने पास रखने से तथा प्रतिदिन १०८ बार ऋद्धि-मन्त्र ४२ दिन तक जपने से सब अपने आधीन हो जाते हैं।

२२—यन्त्र गले में बांधने से तथा हल्दी की गांठ २१ बार मन्त्र द्वारा मंत्रित करके चबाने से भूत, पिशाच, चुडैल आदि दूर हो जाती हैं।

२३—पहले १०८ बार मन्त्र जप कर अपने शरीर की रक्षा करें फिर जिसको प्रेत बाधा हो उसे झाड़ें, यन्त्र पास रक्खे तो प्रेत-बाधा दूर होती है।

२४—प्रतिदिन १०८ बार मन्त्र जपना चाहिये। २१ बार मन्त्र पढ़ कर राख मंत्रित करके उसे शिर पर लगाने से शिर पीड़ा दूर हो जाती है।

२५—ऋद्धि और मन्त्र के जपने से तथा यन्त्र को पास में रखने से धीज उतरती है तथा आराधक पर अग्नि का प्रभाव नहीं होता।

२६—ऋद्धि-मंत्र द्वारा १०८ बार तेल मंत्रित करके शिर पर लगाने से तथा यन्त्र अपने पास रखने से आधा शीशी आदि शिर के रोग दूर हो जाते हैं। उस तेल की मालिश करने से तथा मंत्रित जल पिलाने से प्रसूति शीघ्र आराम से हो जाती है।

२७—काली माला से ऋद्धि-मन्त्र का जाप करने से, प्रतिदिन एक बार अलोना भोजन करने से तथा कालीमिर्च से हवन करने पर शत्रु का नाश होता है। ऋद्धि और मन्त्र का जाप करते रहने से तथा यन्त्र अपने पास रखने से शत्रु मन्त्र आराधना में कुछ हानि नहीं पहुंचा सकता।

२८—ऋद्धि-मंत्र की आराधना से और यंत्र पास में रखने से व्यापार में लाभ, विजय, सुख प्राप्त होता है। सब कार्य सिद्ध होते हैं।

२९—ऋद्धि तथा मन्त्र के द्वारा १०८ बार मंत्रित जल पिलाने से और यन्त्र को पास रखने से दुखती हुई आँखें अच्छी हो जाती हैं, बिच्छू का विष उतर जाता है।

३०—मंत्र की आराधना करने तथा यन्त्र अपने पास रखने से शत्रु का स्तम्भन होता है, चोर सिंहादि का भय नहीं रहता।

३१—यन्त्र अपने पास रखने तथा मंत्र की जाप से राज्य में सम्मान होता है, दाद खुजली आदि चर्मरोग नहीं होते।

३२—कुमारी कन्या के द्वारा काते हुए सूत को ऋद्धि-मन्त्र द्वारा मंत्रित करके उस सूत को गले में बाँधने से और यन्त्र पास में रखने से संग्रहणी आदि पेट के रोग दूर हो जाते हैं।

३३—कुमारी कन्या द्वारा काते हुए सूत को ऋद्धि-मंत्र द्वारा २१ बार मंत्रित करके, उस सूत का गंडा गले में बाँधने से, झाड़ा देने तथा यन्त्र पास में रखने से एकांतरा, ज्वर, तिजारी, ताप आदि रोग दूर होते हैं। गुग्गुल मिश्रित घी की धूप खेनी चाहिए।

३४—कसूम के रंग से रंगे हुए सूत को ऋद्धि-मंत्र द्वारा १०८ बार मंत्रित करके तथा उसको गुग्गुल की धूप देकर बांधने से और यन्त्र पास में रखने से गर्भ असमय नहीं गिरता।

३५—ऋद्धि-मन्त्र की आराधना करने और यन्त्र पास रखने से दुर्भिक्ष, चोरी, मरी, मिरगी, राजभय आदि नष्ट होते हैं। इस मंत्र की आराधना स्थानक में करनी चाहिए और यंत्र का पूजन करें।

३६—ऋद्धि-मंत्र की आराधना से और यंत्र पास रखने से सम्पति लाभ होता है। विधान—१२००० जाप लाल पुष्प द्वारा करनी चाहिए और यंत्र की पूजन भी साथ करनी चाहिये।

३७—ऋद्धि-मंत्र द्वारा २१ बार पानी मंत्र कर मुंह पर छींटने से और यंत्र पास रखने से दुर्जन वश होता है, उसकी जीभ का स्तम्भन होता है।

३८—ऋद्धि-मंत्र जपने से और यंत्र पास रखने से धन का लाभ होता है और हाथी वश में होता है।

३९—ऋद्धि-मंत्र जपनें और यंत्र पास रखने से सर्प और सिंह का डर नहीं रहता तथा भूला हुआ रास्ता मिल जाता है।

४०—ऋद्धि-मंत्र द्वारा २१ बार पानी मंत्रकर घर के चारों ओर छींटने से और यंत्र पास रखने से अग्नि का भय मिटता है।

४१—ऋद्धि-मंत्र के जपने से तथा यंत्र के पास रखने से राज-दरबार में सम्मान होता है और झाड़ा देने से सर्प का विष उतरता है। कांसे के कटोरे में जल १०८ बार मंत्रकर पानी पिलाने से विष उतर जाता है।

४२—ऋद्धि-मंत्र की आराधना से और यंत्र के पास रखने से युद्ध का भय नहीं रहता।

४३—ऋद्धि-मंत्र की आराधना और यंत्र पूजन से सब प्रकार का भय मिटता है। युद्ध में हथियार की चोट नहीं लगती तथा राज-द्वारा धन-लाभ होता है।

४४—ऋद्धि-मंत्र की आराधना और यंत्र के पास रखने से आपत्ति मिटती है। समुद्र में तूफान का भय नहीं होता। समुद्र पार कर लिया जाता है।

४५—ऋद्धि-मंत्र जपने और यंत्र पास रखने तथा उसकी प्रति-दिन त्रिकाल पूजा करने से सर्व भयानक रोग नष्ट होते हैं और उपसर्ग दूर होता है।

४६—ऋद्धि मंत्र जपने और यंत्र पास रखने तथा उसकी त्रिकाल पूजा करने से कैद से छुटकारा होता है। राजा आदि का भय नहीं रहता है। प्रतिदिन १०८ बार जाप करना चाहिए।

४७—ऋद्धि-मन्त्र को १०८ बार आराधना कर शत्रु पर चढ़ाई करने वाले को विजय लक्ष्मी प्राप्त होती है। शत्रु का नाश होता है, बैरी के शस्त्रों की धार व्यर्थ हो जाती है, बन्दूक की गोली, बरछी आदि के घाव नहीं हो पाते।

४८—प्रतिदिन १०८ बार २१ दिन तक मंत्र जपने से और यन्त्र पास रखने से मनोवांछित कार्य की सिद्धि होती है, जिस को अपने आधीन करना हो उसका नाम चितन करने से वह व्यक्ति अपने वश होता है।

साधन-विधि

वशीकरण मंत्र सिद्ध करने के लिये वस्त्र धोती, दुपट्टा, बनियान पीले रंग की होनी चाहिये, बैठने का आसन और जपने की माला भी पीली होनी चाहिए।

धन लाभ—के लिये मंत्र-साधन में सफेद वस्त्र, सफेद आसन, और सफेद मोती की माला होनी चाहिए।

आकर्षण—मंत्र-साधन में हरे बस्त्र, हरी माला और हरा आसन होना चाहिए।

मोहन में—लाल बस्त्र, लाल आसन और मूंगे की माला होनी चाहिए।

जिस मंत्र-साधन के लिए कोई दिशा न बतलाई गई हो उसका साधन पूर्व दिशा की ओर मुख करके करना चाहिए।

भक्तामर प्रणतमौलिमणि प्रभाणा-
मुद्योतकं दलितपापतमोवितानम्।
सम्यक्प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा-
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम्॥१

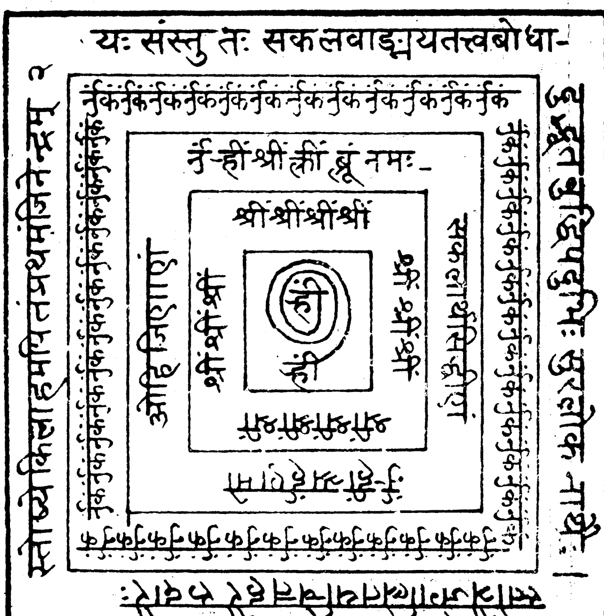
यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधा-
दुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्तहरैरुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् २
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लूं नमः

बुद्ध्याविनापिविबुधार्चितपादपीठ
स्तोतुंसमुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम्
मन्यः क इच्छतिजनः सहसागृहीतुम् ३
नमोभगवते
परमतत्त्वार्थभावकार्यसिद्धैः

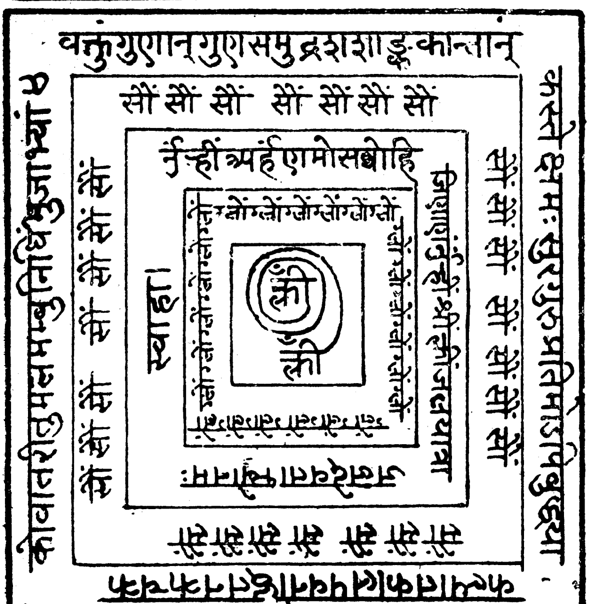
वक्तुंगुणान्गुणसमुद्रशशाङ्ककान्तान्
कस्तेक्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपिबुद्ध्या
कोवातरीतुमलमम्बुनिधिंभुजाभ्यां ४
सौं सौं सौं सौं सौं सौं सौं
स्वाहा

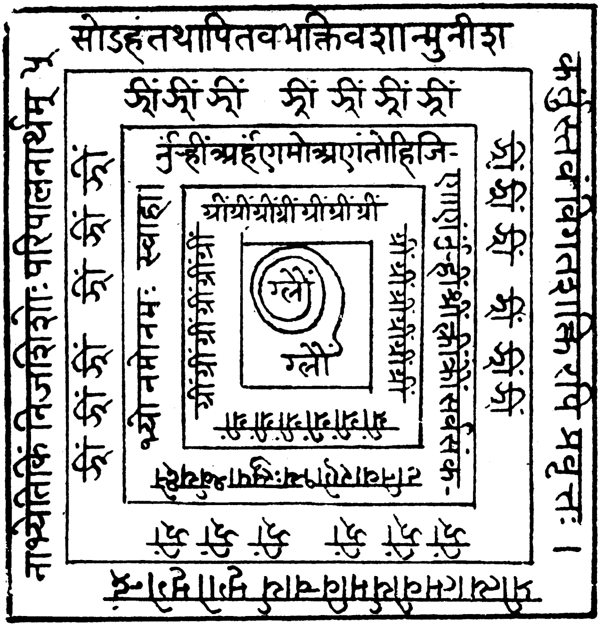
सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश
कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः।
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ५
ॐ ह्रीं अर्हं णमो अणंतोहिजि-

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्।
तच्चारुचूतकलिकानिकरैकहेतु ६
ॐ ह्रीं अर्हं णमो कुट्ठबुद्धीणं।

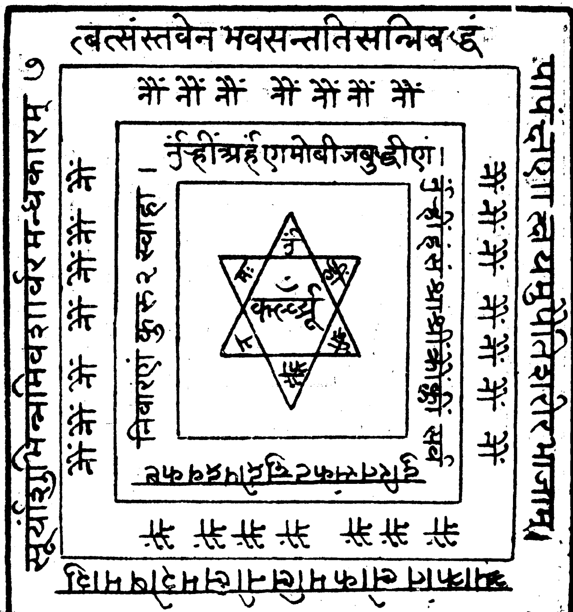
त्वत्संस्तवेन भवसन्ततिसन्निबद्धं
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम् ।
आक्रान्तलोकमलिनीलमशेषमाशु
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ॥ ७
ॐ ह्रीं अर्हं णमो बीजबुद्धीणं ।

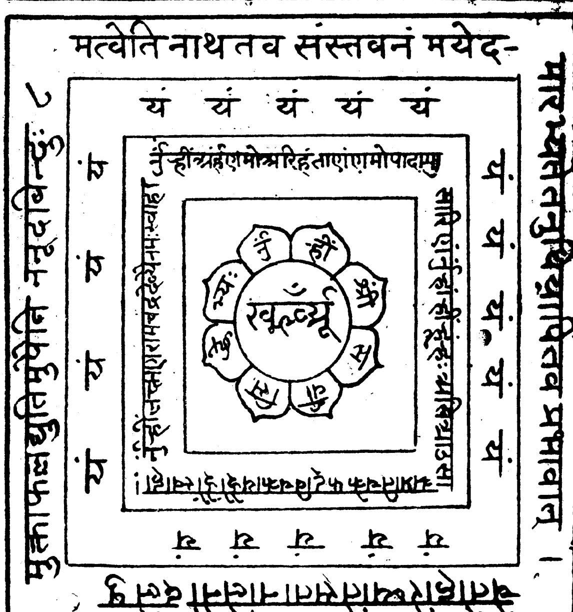
मत्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनुधियापि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु
मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिन्दुः ॥ ८
ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं णमो पादाणुसारीणं

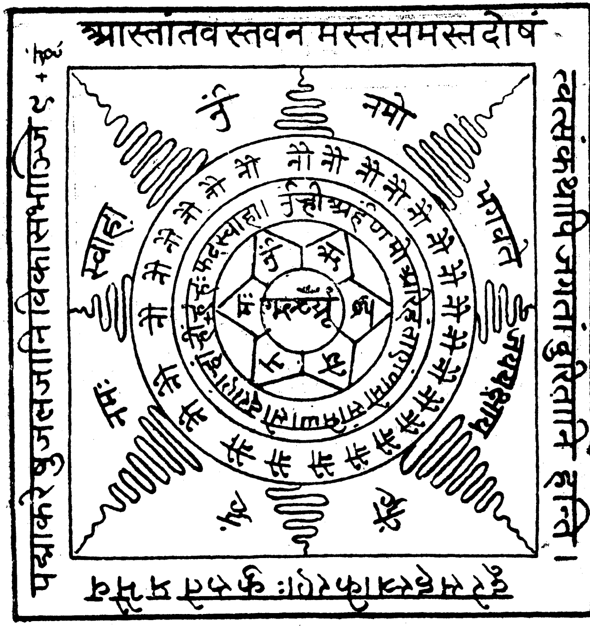
आस्तां तव स्तवन मस्तसमस्तदोषं
त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति।
पद्माकरे षु जलजानि विकासभाञ्जि ९
नमो
भगवते
स्वाहा

नात्यद्भुतं भुवनभूषण भूतनाथ
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तम भीष्टुवन्तः।
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति १०

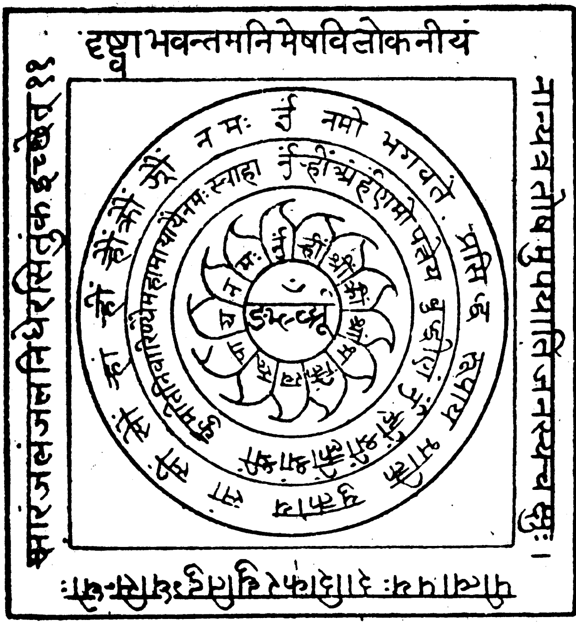
दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयं
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः।
क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत् ११
ॐ नमो भगवते

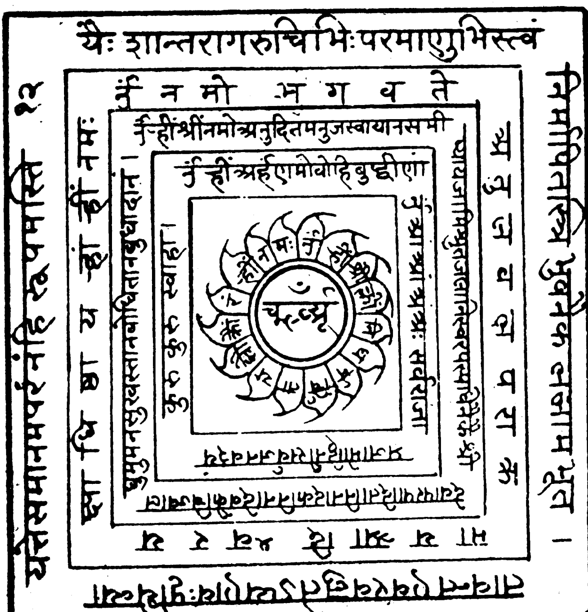
यैः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं
निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत ।
यत्ते समानमपरं नहि रूपमस्ति १२
ॐ नमो भगवते
ॐ ह्रीं श्रीं नमो अनुदितमनुजस्वायानसमी
ॐ ह्रीं अर्हं णमो बोहिबुद्धीणं

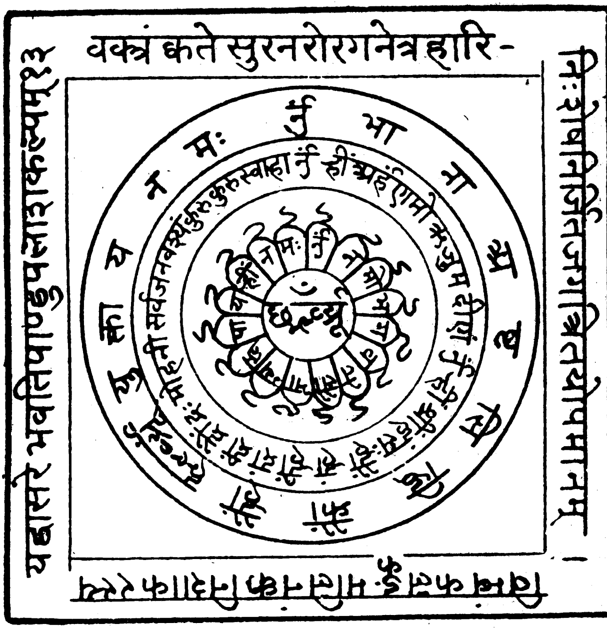
वक्त्रं क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि-
निःशेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानम्।
यद्वासरे भवति पाण्डुपलाशकल्पम् १३

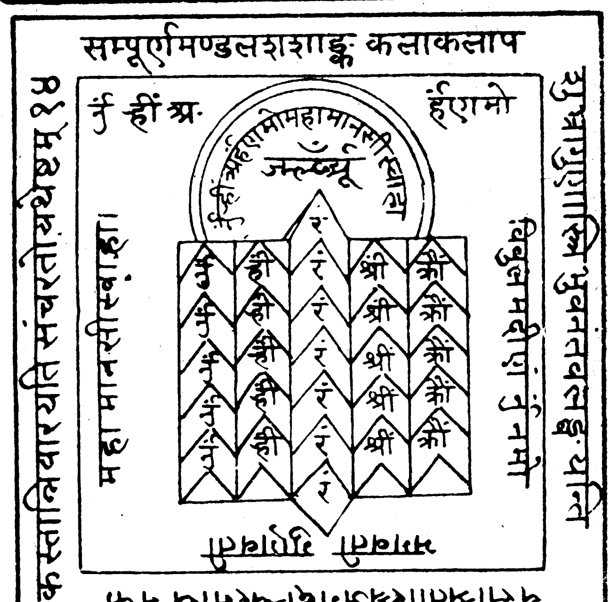
सम्पूर्णमण्डलशशाङ्ककलाकलाप
शुभ्रागुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति
कस्तानिवारयति संचरतोयथेष्टम् १४
ॐ ह्रीं अ
र्हं णमो
महामानसी स्वाहा।

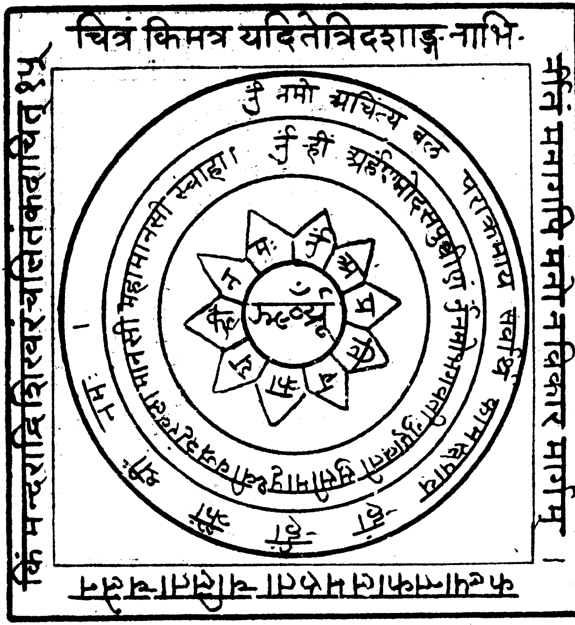
चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभि-
र्नीतं मनागपि मनो न विकार मार्गम्।
किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ॥१५॥
ॐ नमो अचिंत्य बल पराक्रमाय सर्वार्थ
ॐ ह्रीं अर्हं णमो दसपुव्वीणं
महामानसी स्वाहा।

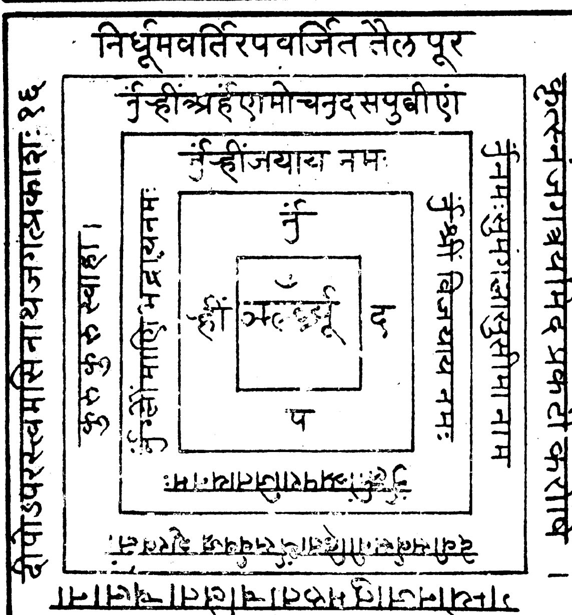
निर्धूमवर्तिरपवर्जिततैलपूर
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि।
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाशः ॥१६॥
ॐ ह्रीं अर्हं णमो चउदसपुव्वीणं
ॐ नमः सुमंगला सुसीमा नाम
ॐ ह्रीं जयाय नमः
ॐ श्रीं विजयाय नमः
ॐ ह्रीं माणिभद्राय नमः
कुरु कुरु स्वाहा।
ॐ
ह्रीं
द
प

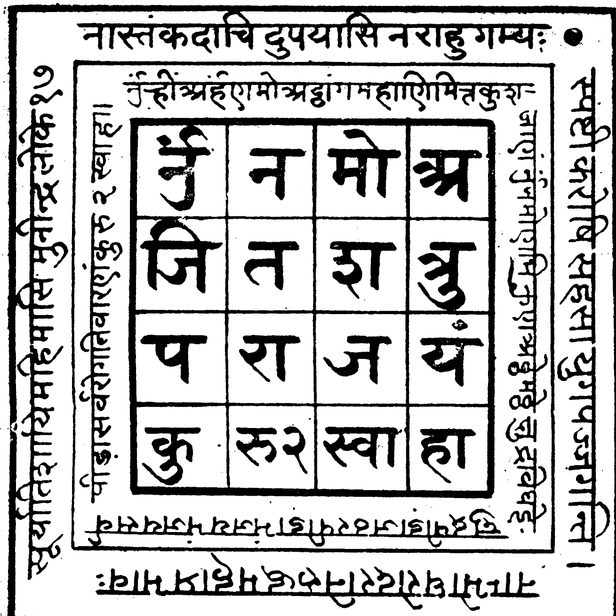
नास्तंकदाचिदुपयासि न राहु गम्यः
ॐ न मो अ
जि त श त्रु
प रा ज यं
कु रु२ स्वा हा

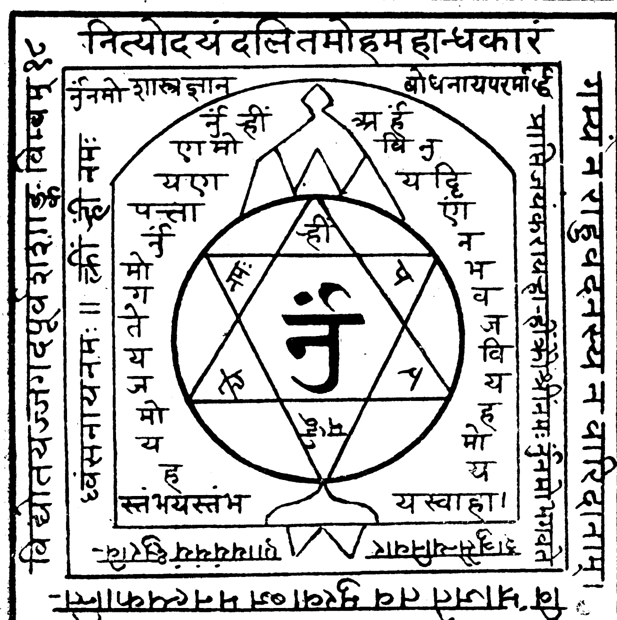
नित्योदयं दलितमोहमहान्धकारं
ॐ नमो शास्त्रज्ञान
बोधनायपरमां
स्तंभयस्तंभ
यस्वाहा।
ॐ

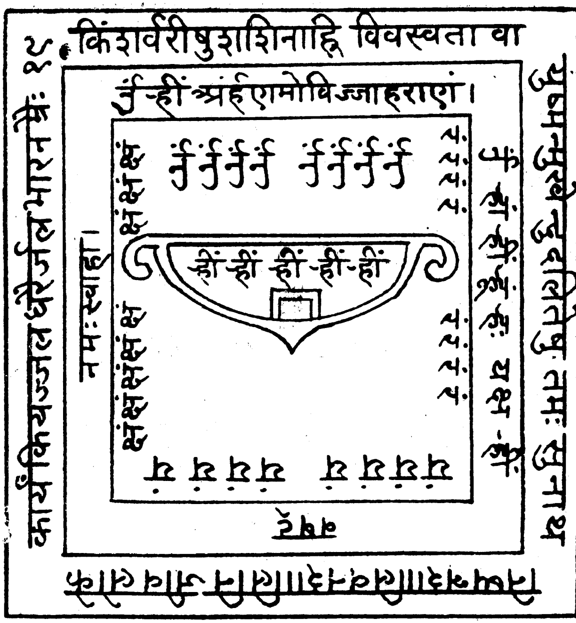
किंशर्वरीषुशशिनाह्नि विवस्वता वा
ॐ ह्रीं अर्हं णमो विज्जाहराणं।
ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ
ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं
नमः स्वाहा।
युष्मन्मुखेन्दुदलितेषु तमःसु नाथ
कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः १९

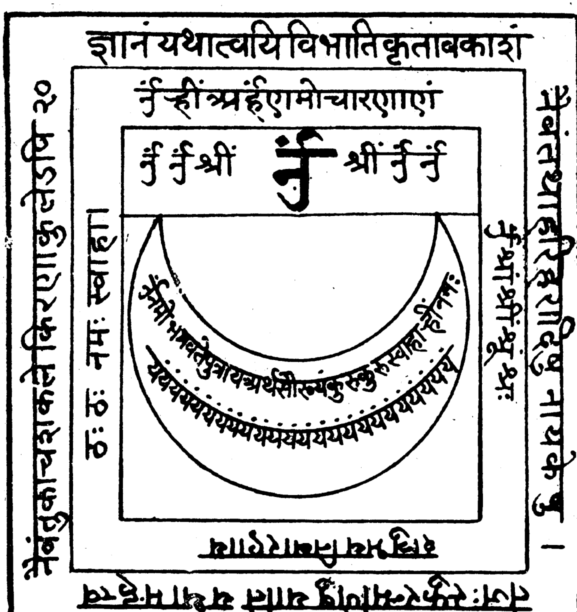
ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं
ॐ ह्रीं अर्हं णमो चारणाणं
ॐ ॐ श्रीं ॐ श्रीं ॐ ॐ
ठः ठः नमः स्वाहा।
नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु।
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि २०

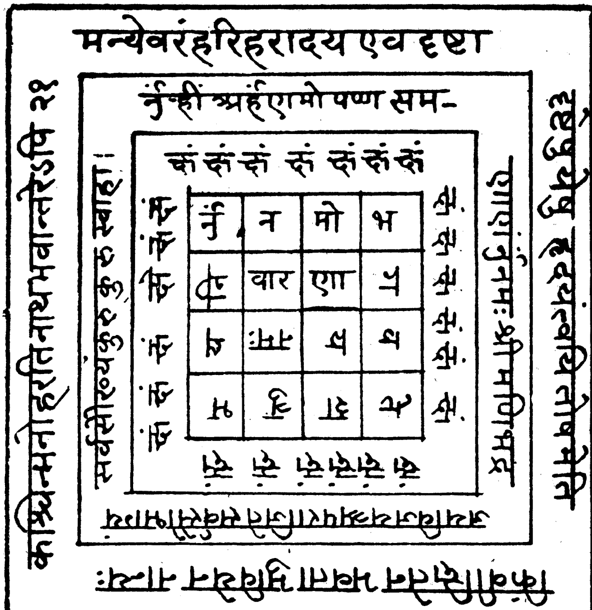
मन्येवरं हरिहरादय एव दृष्टा
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः
कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि २१
ॐ ह्रीं अर्हं णमो पण्ण सम-
सर्वसौख्यं कुरु कुरु स्वाहा।

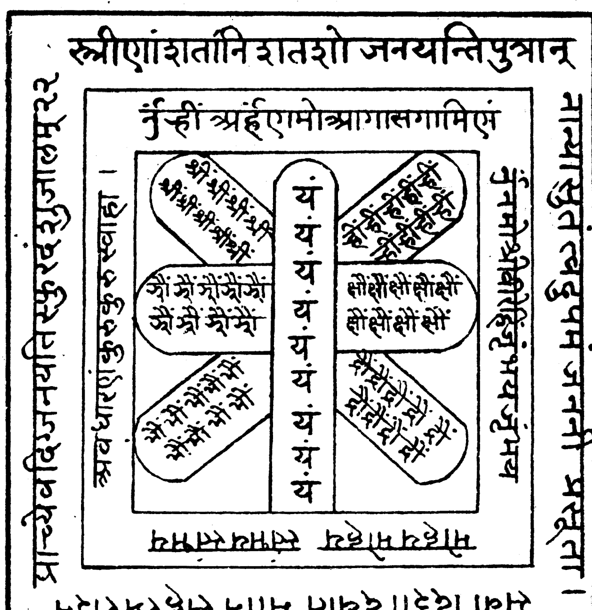
स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् २२
ॐ ह्रीं अर्हं णमो आगासगामिणं
स्वाहा।

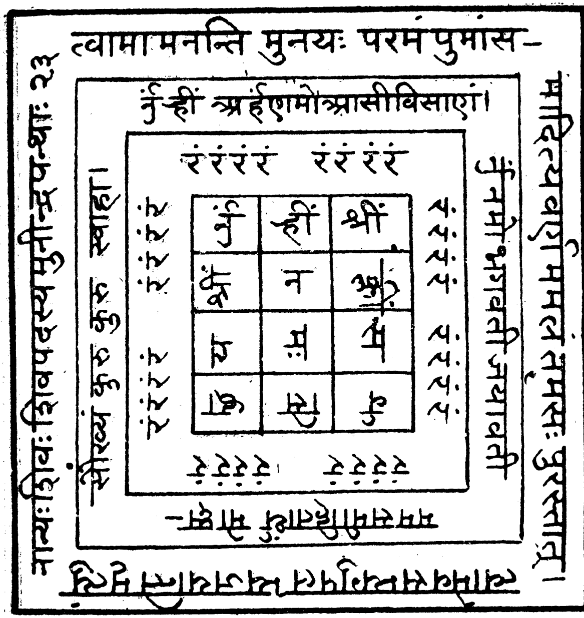

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्यवर्णममलं तमसः पुरस्तात्।
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र पन्थाः २३
ॐ ह्रीं अर्हं णमो आसीविसाणं।
ॐ नमो भगवती जयावती
सौख्यं कुरु कुरु स्वाहा।
रंरंरंरं रंरंरंरं
ॐ ह्रीं श्रीं
न

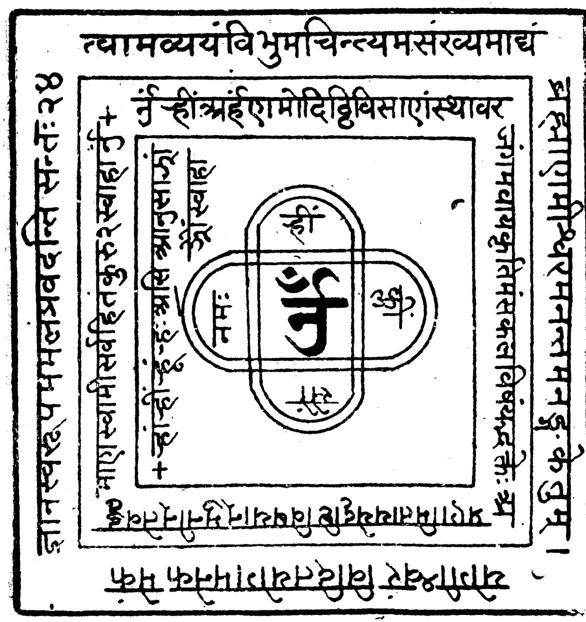

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनङ्गकेतुम्।
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः २४
ॐ ह्रीं अर्हं णमो दिट्ठिविसाणं स्थावर
ह्रीं
ॐ
नमः

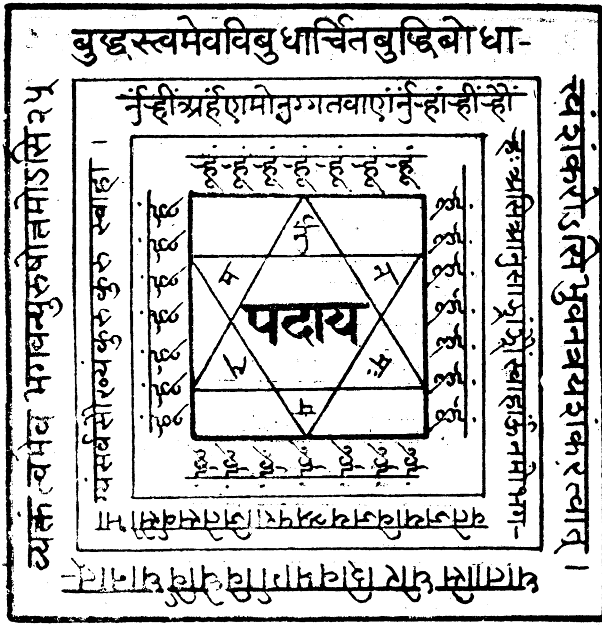
बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धिबोधा-
त्त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रय शंकरत्वात् ।
यक्ष त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोऽसि २५
ॐ ह्रीं अर्हं णमो उग्गतवाणं ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं
पदाय

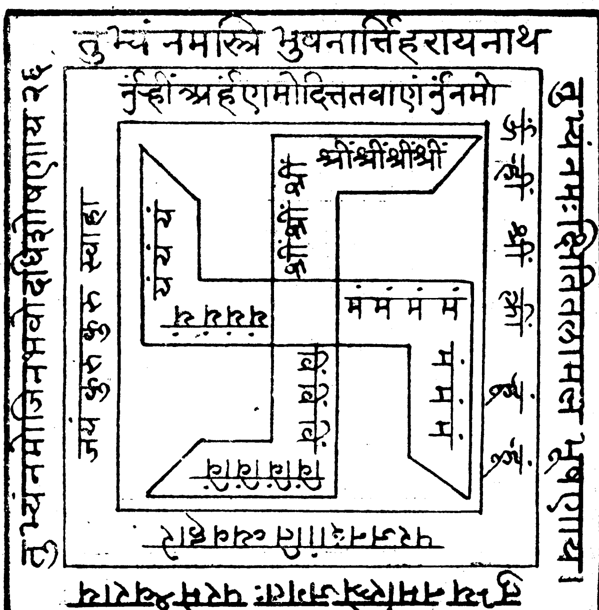
तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्त्तिहराय नाथ
तुभ्यं नमः क्षितितलामल भूषणाय ।
तुभ्यं नमो जिन भवोदधिशोषणाय २६
ॐ ह्रीं अर्हं णमो दित्ततवाणं ॐ नमो
श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं
मं मं मं मं
जय कुरु कुरु स्वाहा

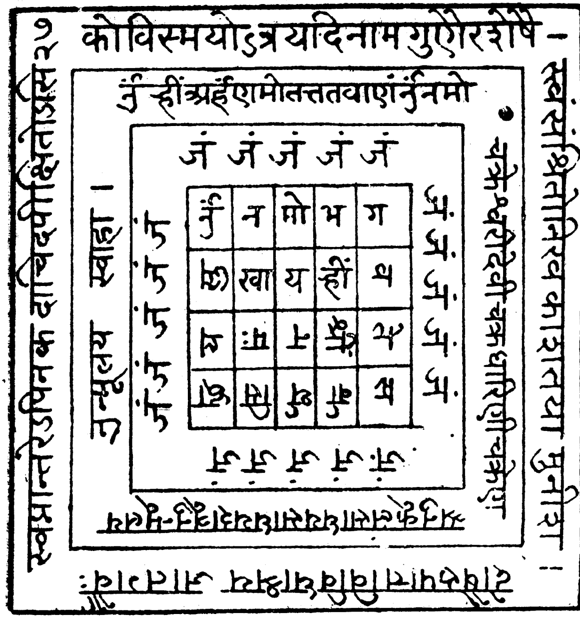
कोविस्मयोऽत्र यदिनाम गुणैरशेषै-
ॐ ह्रींअर्हंणमोतत्ततवाणंॐनमो
स्त्वंसंश्रितोनिरवकाशतया मुनीश ।
स्वप्नान्तरेऽपिनकदाचिदपीक्षितोऽसि २७

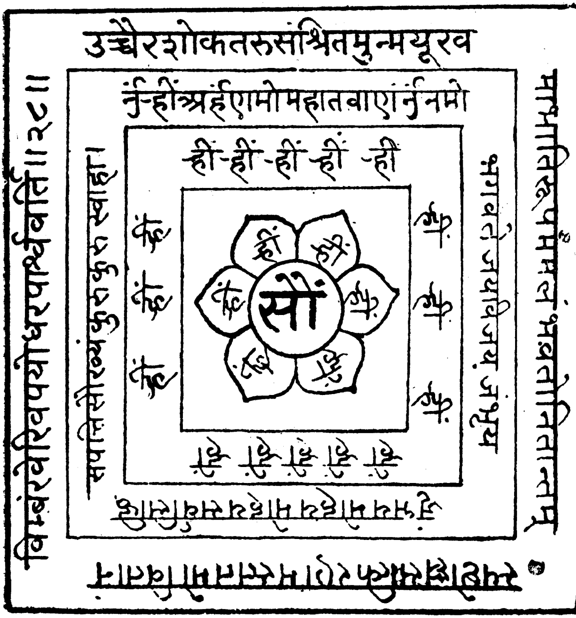
उच्चैरशोकतरुसंश्रितमुन्मयूख
ॐ ह्रींअर्हंणमोमहातवाणंॐनमो
ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं
सों
माभातिरूपममलं भवतोनितान्तम्
बिम्बंरवेरिवपयोधरपार्श्ववर्ति ॥ २८ ॥

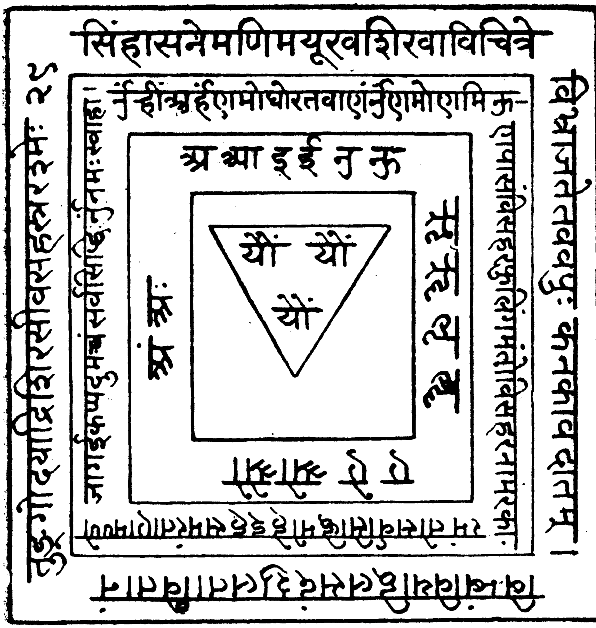
सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्।
तुङ्गोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मेः २९
ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरतवाणं ॐ णमो
अ आ इ ई उ ऊ
यों यों
यों

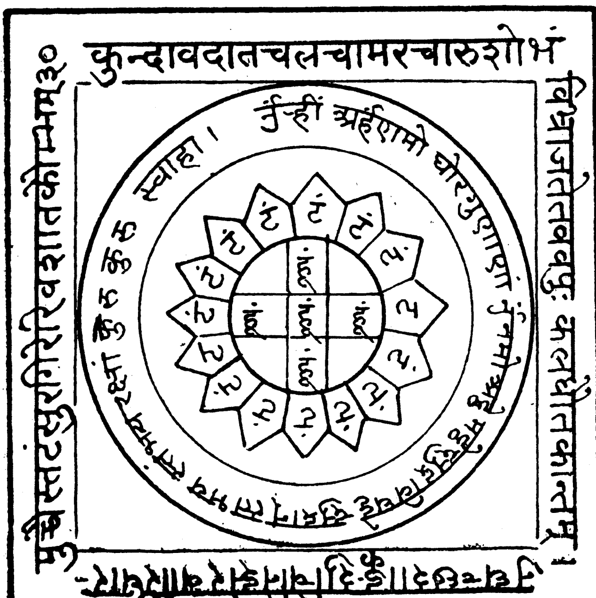
कुन्दावदातचलचामरचारुशोभं
विभ्राजते तव वपुः कलधौतकान्तम्।
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम्॥ ३०
ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरगुणाणं
स्वाहा।

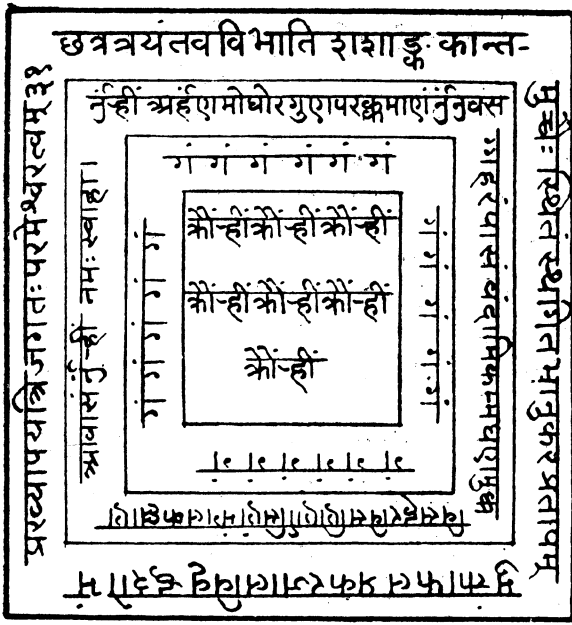
छत्रत्रयं तव विभाति शशाङ्क कान्त-
मुच्चैः स्थितं स्थगितभानुकरप्रतापम्
प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ३१
ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरगुणपरक्कमाणं
क्रौं ह्रीं क्रौं ह्रीं क्रौं ह्रीं
क्रौं ह्रीं क्रौं ह्रीं क्रौं ह्रीं
क्रौं ह्रीं

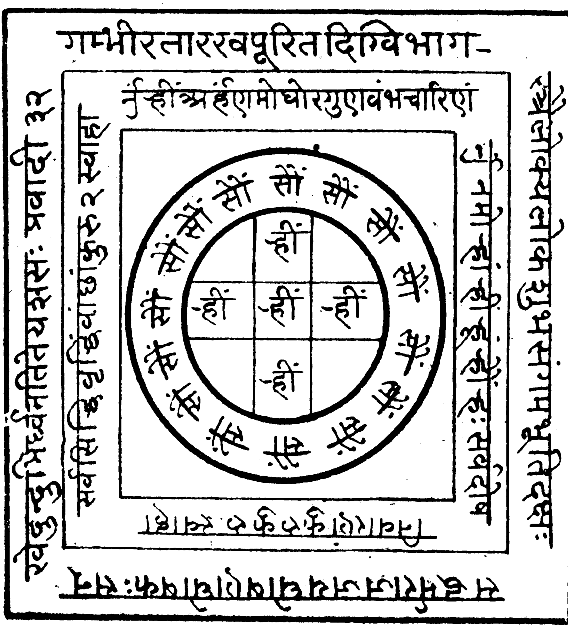
गम्भीरताररवपूरित दिग्विभाग-
त्रैलोक्यलोक शुभसंगमभूतिदक्षः
खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ३२
ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरगुणबंभचारिणं
ह्रीं
ह्रीं ह्रीं ह्रीं
ह्रीं

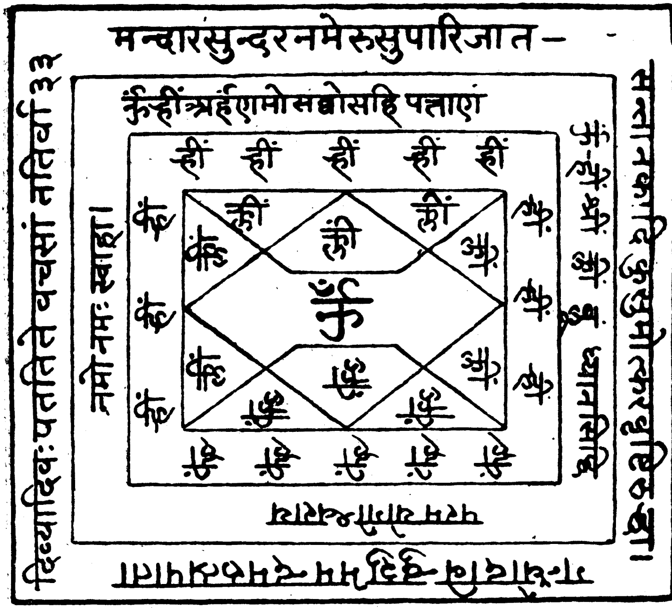
मन्दारसुन्दरनमेरुसुपारिजात-
सन्तानकादिकुसुमोत्करवृष्टिरुद्धा।
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ३३
ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहि पत्ताणं
नमो नमः स्वाहा।
ॐ

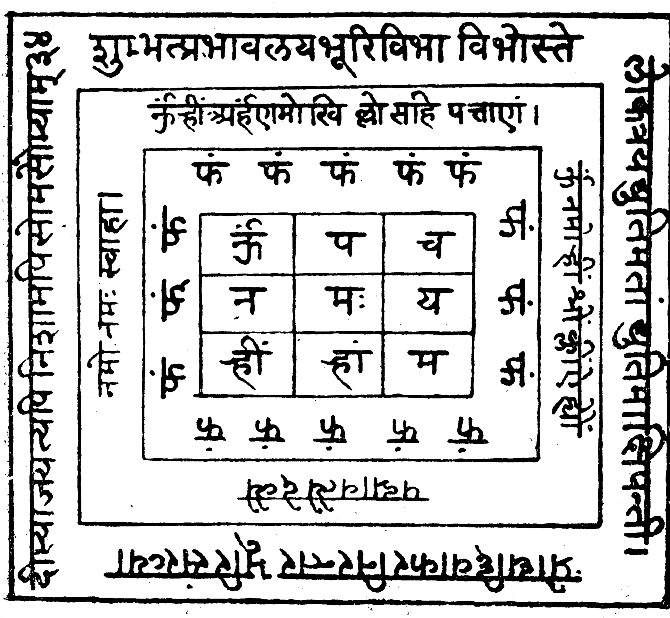
शुम्भत्प्रभावलयभूरिविभा विभोस्ते
लोकत्रयद्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती।
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोमसौम्याम् ३४
ॐ ह्रीं अर्हं णमो खिल्लोसहि पत्ताणं।
नमो नमः स्वाहा।
फं फं फं फं फं
ॐ प च
न मः य
ह्रीं ह्रां म

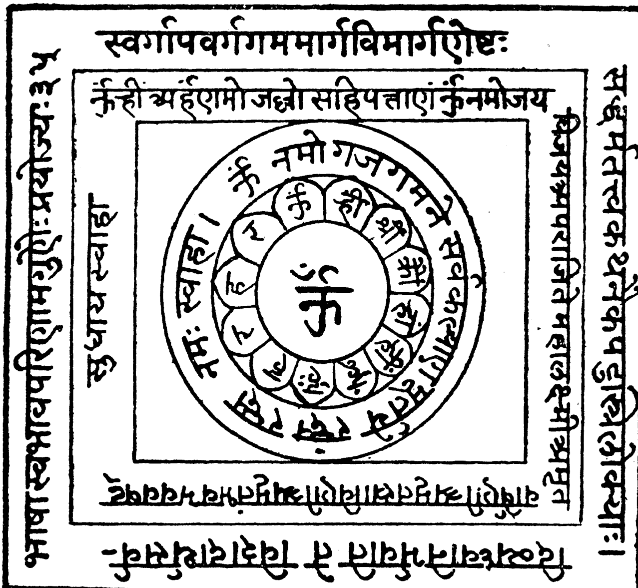
स्वर्गापवर्गगममार्गविमार्गणेष्टः
सद्धर्मतत्त्वकथनैकपटुस्त्रिलोक्याः ।
भाषास्वभावपरिणामगुणैः प्रयोज्यः ॥३५
ॐ ह्रीं अर्हं णमो जङ्घो सहिपत्ताणं ॐ नमो जय
ॐ नमो गजगमने सर्वकल्याण
ॐ
सुधाय स्वाहा

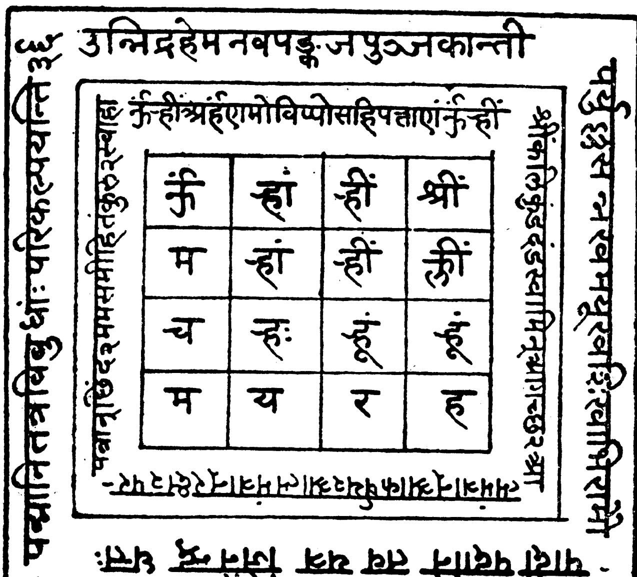
उन्निद्रहेम नवपङ्कज पुञ्जकान्ती
पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥३६
ॐ ह्रीं अर्हं णमो विप्पोसहिपत्ताणं ॐ ह्रीं
ॐ ह्रां ह्रीं श्रीं
म ह्रां ह्रीं क्लीं
च ह्रः ह्रूं ह्रूं
म य र ह

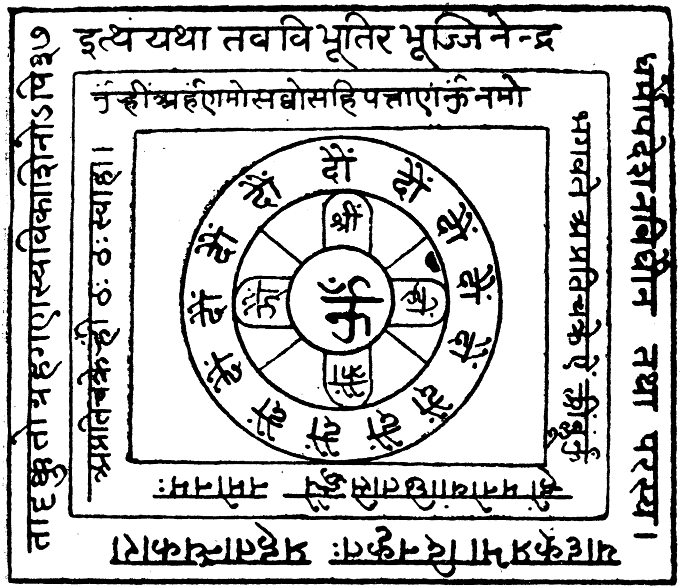
इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र
ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहि पत्ताणं ॐ नमो
ॐ

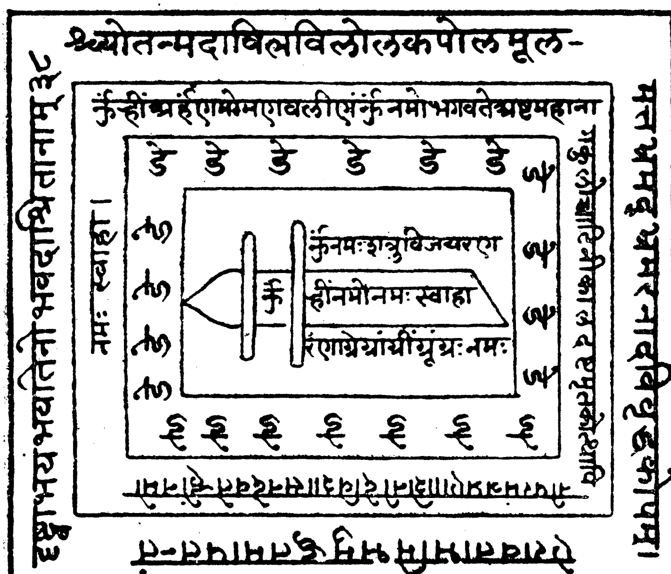
श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूल-
ॐ ह्रीं अर्हं णमो मणबलीणं ॐ नमो भगवते अष्टमहाना
ॐ नमः शत्रुविजयरणे
ह्रीं नमो नमः स्वाहा
रणाग्रे ग्रां ग्रीं ग्रूं ग्रः नमः

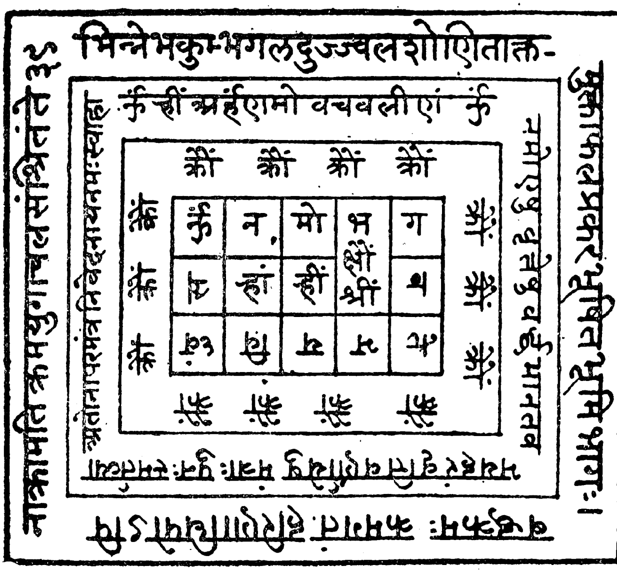
भिन्नेभकुम्भगलदुज्ज्वलशोणिताक्त-
मुक्ताफलप्रकरभूषितभूमिभागः।
नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ३९
ॐ ह्रीं अर्हं णमो वचबलीणं ॐ

कल्पान्तकालपवनोद्धतवह्निकल्पं
दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिङ्गम्
त्वन्नामकीर्तनजलं शमयत्यशेषम् ४०
ॐ ह्रीं अर्हं णमो कायबलीणं।
कुरु कुरु स्वाहा

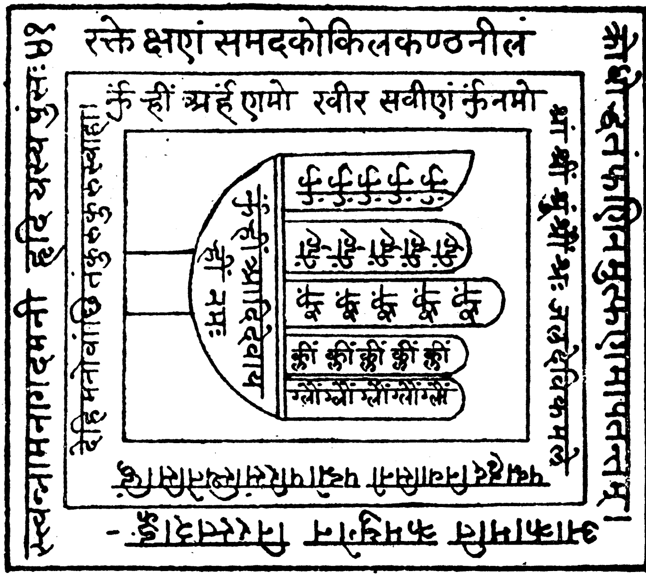
रक्ते क्षणं समदकोकिलकण्ठनीलं
ॐ ह्रीं अर्हं णमो खीर सवीणं ॐ नमो
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम्।
त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः ५१
क्लीं क्लीं क्लीं क्लीं क्लीं

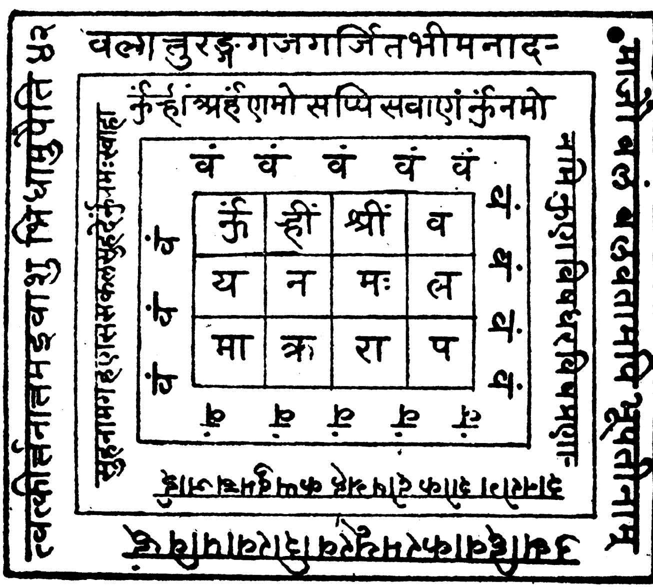
वल्गत्तुरङ्गगजगर्जितभीमनाद-
ॐ ह्रीं अर्हं णमो सप्पि सवाणं ॐ नमो
माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम्
त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ५२
वं वं वं वं वं
ॐ ह्रीं श्रीं व
य न मः ल
मा क्र रा प

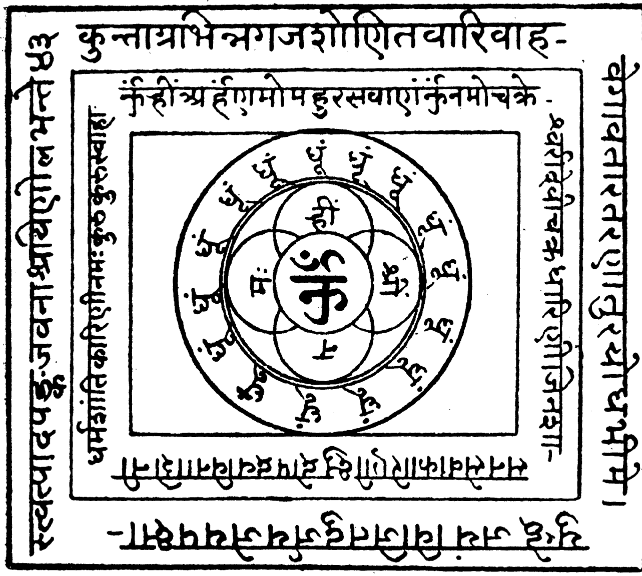
कुन्ताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाह-
वेगावतारतरणातुरयोधभीमे।
स्त्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिणो लभन्ते ४३
ॐ ह्रीं अर्हं णमो महुरसवाणं ॐ नमो चक्रे-
श्वरीदेवी चक्रधारिणी जिनशा-
धर्मशांतिकारिणि नमः कुरु कुरु स्वाहा

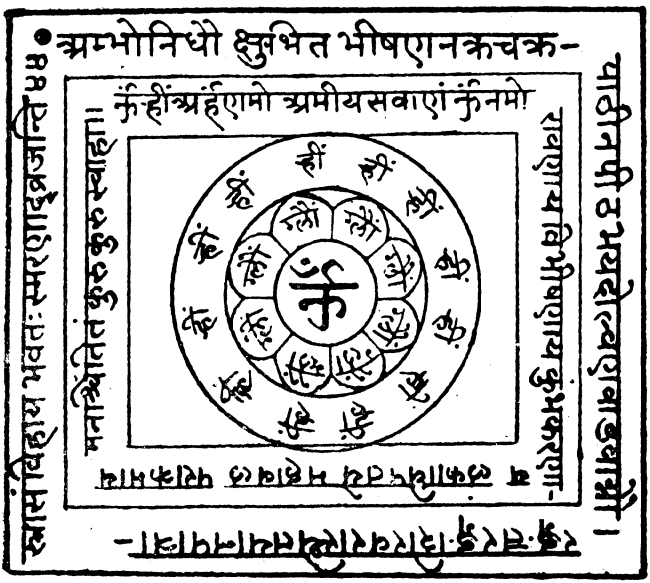
अम्भोनिधौ क्षुभित भीषणनक्रचक्र-
पाठीनपीठभयदोल्बणवाडवाग्नौ।
त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद्व्रजन्ति ४४
ॐ ह्रीं अर्हं णमो अमीयसवाणं ॐ नमो
रावणाय विभीषणाय कुम्भकरणा-
मनोवाञ्छितं कुरु कुरु स्वाहा।।

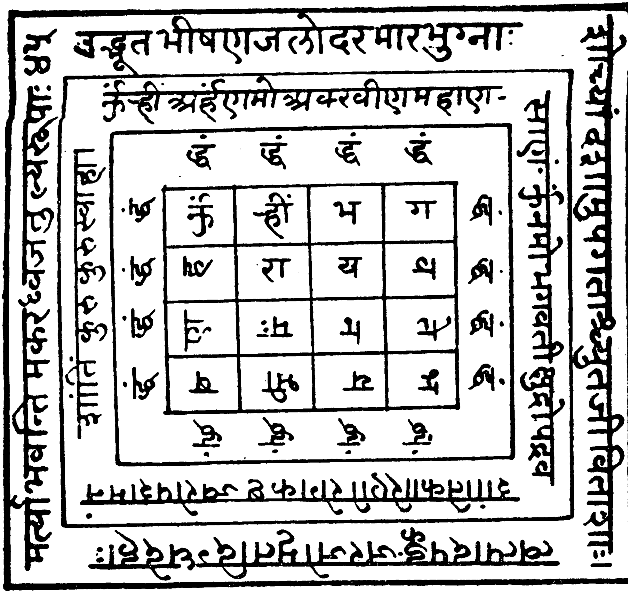
उद्भूतभीषणजलोदरभारभुग्नाः
ॐ ह्रीं अर्हं णमो अक्खीणमहाणं-
मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ॥ ४५
शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशाः ।
शांतिं कुरु कुरु स्वाहा

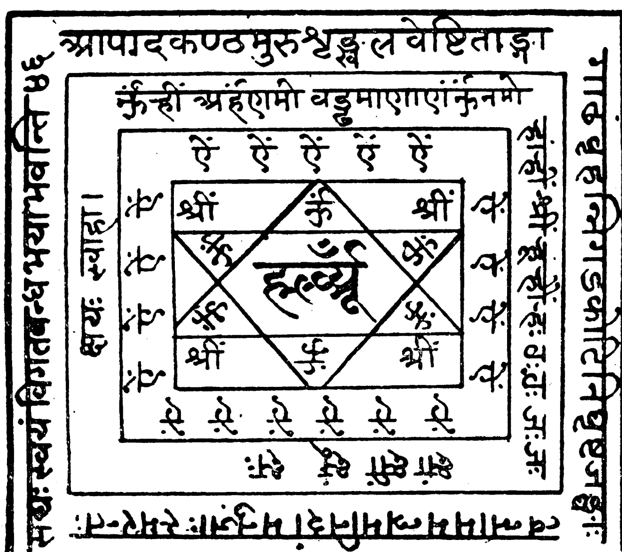
आपादकण्ठमुरुशृङ्खलवेष्टिताङ्गा
ॐ ह्रीं अर्हं णमो वड्ढमाणाणं ॐ नमो
ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं
गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजङ्घाः
मन्त्रः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति ॥ ४६

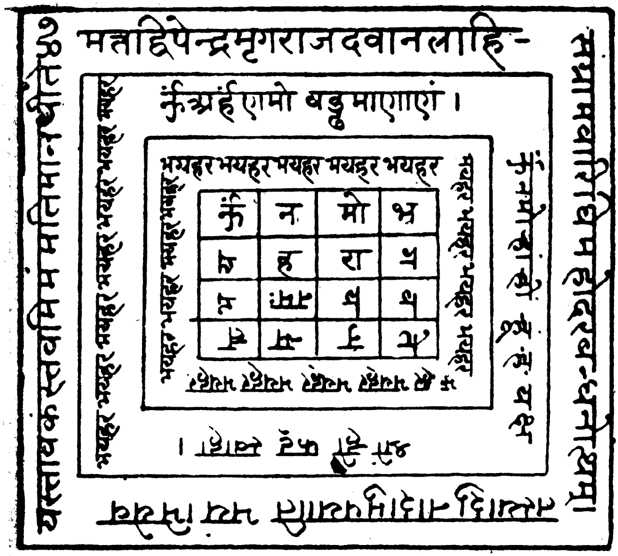
मत्ताद्विपेन्द्रमृगराजदवानलाहि-
संग्रामवारिधिमहोदरबन्धनोत्थम्।
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ४७
ॐ अर्हं णमो वड्ढमाणाणं ।
भयहर भयहर भयहर भयहर भयहर

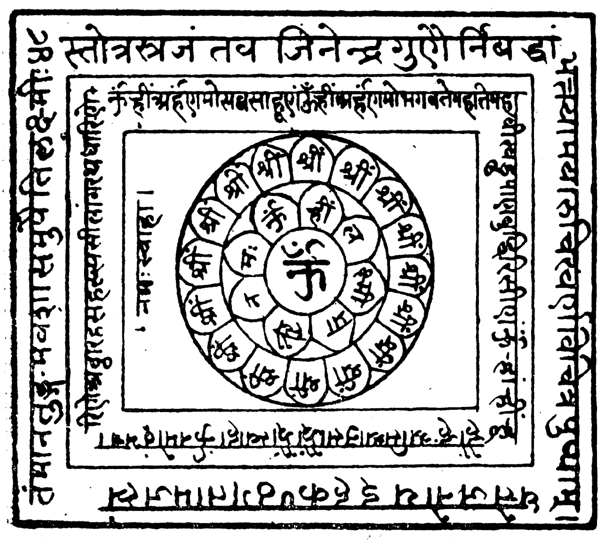
स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र गुणैर्निबद्धां
भक्त्या मया रुचिरवर्णविचित्रपुष्पाम्।
तं मानतुङ्गमवशा समुपैति लक्ष्मीः ४८
ॐ

हमारे प्रकाशन

१. भक्तामर स्तोत्र—मूल, हिन्दी अर्थ, पाँच भाषा भक्तामर, अंग्रेजो अनुवाद, यन्त्र, मन्त्र तथा साधन विधि सहित। तृतोय संस्करण—पृष्ठ १४८। मूल्य—दो रुपये।

२. छहढाला संग्रह—पं० दौलत राम जी कृत (शब्दार्थ भेद तथा सार सहित); और पं० बुधजन जी व पं० द्यानतराय जी कृत छहढाले शब्दार्थ सहित। तृतीय संस्करण पृष्ठ ६०। मूल्य ४० पैसे।

३. पूजन-पाठ प्रदीप—दैनिक, पर्व, नैमित्तिक पूजन, पाठ, पंच-स्तोत्र, मोक्ष शास्त्र, भजन, आरती, चालीसा, जाप्य मन्त्र, अरहंत-पासा केवली आदि आवश्यक सामग्री का सुन्दर संग्रह। प्रेस में।

४. सोनगढ सिद्धान्त—इसमें सोनगढ की मान्यताओं की शास्त्रीय दृष्टि से समीक्षा की गई है तथा मतभेद के विषयों पर प्रतिष्ठित विद्वानों के उच्च कोटि के लेखों का संग्रह है। तृतीय संस्करण। मूल्य केवल ४० पैसे

५. दैनिक जैन धर्म चर्या—दर्शन, पूजन, स्वाध्याय आदि विषयों का सरल सुबोध विवेचन। (समाप्त)

६. विधि का विधान—कर्म सिद्धान्त पर सभी दृष्टि-कोणों से सरल भाषा में युक्ति पूर्ण विवेचन। (समाप्त)

७. तात्विक विचार—जैन धर्म के मूल सिद्धान्त, निश्चय-व्यवहार, निमित-उत्पादन ... न। (समाप्त)

नोट—सभी पुस्तकों प... के लिए सौ से अधिक पुस्तकों पर व...

... श्री कृष्ण जैन,
... दि० जैन मंदिर,
(बर्फ खाने के पीछे) सब्जी मण्डी देहली-६

विराट् प्रिंटिंग एजेन्सी द्वारा सैनी प्रिंटर्स, पहाड़ी धीरज, दिल्ली-६